अहमद अबू-बकर

दक्खिन की लड़कियां

अहमद अबू-बकर

दार्गिन की लड़कियां

लघु उपन्यास

प्रगति प्रकाशन
मास्को

अनुवादक : प्रताप विद्यालंकार

संपादक : नरेश वेदी

चित्रकार : ग्रि० दौमन

АХМЕДХАН АБУ-БАКАР

ДАРГИНСКИЕ ДЕВУШКИ

Повесть

На языке хинди

—चिराग़ ख़ुद नहीं जलता
(कुबाची चिराग़ों पर खुदी इबारत)

प्राक्कथन

है कोई आप लोगों में जिसने कभी काकेशिया के सिराघिन पर्वत देखे हों, जहां चट्टानों पर से गिरते, कलकल करते झरनों की फुहारों से सूरज छोटे-छोटे इन्द्रधनुषों की मेहराबें बनाता है? है कोई आप में जिसने कभी इन सिराघिन पर्वतों के निवासियों के दरवाज़ों पर दस्तक दी हो और उसकी एक पुराने दोस्त की तरह आवभगत की गयी हो?

जहां तक मेरा सवाल है, मैं तो बहुत बार इन मेहमाननवाज़, मिट्टी की छतोंवाले घरों में रात भर के लिये पनाह पा चुका हूं। घास से ढंकी अनेक ऐसी पहाड़ी पगडंडियों पर जाकर मैं उन पुराने, विस्मृत चश्मों पर पहुंचा हूं, जिनके ऐसे-ऐसे जादूभरे नाम हैं जैसे "छः दुलहनों का चश्मा"। मुझे ऐसे पथरीले रास्तों पर सवार होकर जाना बहुत पसन्द है, जो इतने ढलुवां हों कि मैं अपनी बांहें डाल अपने घोड़े की गर्दन घेर सकूं, या ऐसे टेढ़े-मेढ़े मार्गों के साथ अपनी राह बनाते जाना, जिन्हें कुदालों और बारूद की मदद से

दुर्गम चट्टानों के बीच से बनाया गया है। यहीं मैं पैदा हुआ था और यह हर पहाड़ी के ख़ून में होता है कि वह साल में कम से कम एक बार अपनी जन्मभूमि को वापस जाये, ऊपर के चरागाहों और जलते उपलों के धुएं से महकती अपने देस की हवा में सांस ले, पहाड़ी गांववालों की हंसी-ख़ुशी में शामिल हो और दुख में हिस्सा बंटाये।

"गृहप्रवेश" सदैव आनन्द का अवसर होता है – केवल उन्हीं के लिये नहीं जो नई इमारत में जाते हैं, क्योंकि, जैसा कि इधर के लोग कहा करते हैं, "अपने पड़ोसी के लिए दो की कामना करो, तो अपने को एक की प्राप्ति ज़रूर होगी।" और जब वह गृह, जिसमें "प्रवेश" करना हो, एक ऐसी इमारत हो, जो गांव को एक नया स्कूल, एक शफ़ाख़ाना और एक दूकान प्रदान करे – तो वह तो कुछ ऐसी चीज़ होती है, जो हर एक के लिये आनन्दप्रद होती है, जैसे सामूहिक खेतों और फलों के बाग़ों की अच्छी फ़सल।

और दार्घिन ज़िले के उर्कुख आऊल (गांव) के लिये आज का दिन ऐसा ही है। हर ओर छुट्टी के दिन की-सी मस्ती है। आख़िरकार सामूहिक फ़ार्म की प्रबन्ध-समिति, ग्राम सोवियत और डाकघर ने अपने मलिन, दुमंज़िले, संकरी दरारनुमा खिड़कियों के कारण क़िले या क़ैदख़ाने जैसे लगनेवाले साक्ल्या (मकान) को छोड़ ही दिया। बरसों पहले यह लुटेरों के सरदार यूज़बेक का दीवानख़ाना हुआ करता था, जिसके निरंकुश शासन की याद बूढ़े गांववालों को अब भी है। उसी दिन से, जिस दिन इसका पहला पत्थर रखा गया, नई इमारत को सोवियत सदन ही कहा जाता था। दरबेन्त के सफ़ेद पत्थरों और लाल ईंटों के मेल से यह बनी है; इसकी ऊपरी मंज़िल को शीशे

की बालकनी घेरे है और इस सब पर लोहे की हरी चादरों की छत है।

यह ख़ुशनुमा, सबसे अलग दिखानेवाली इमारत गांव की सबसे अच्छी और प्रमुख जगह पर बनी है। उर्कुख के ही जन्मे वास्तुकार ज़हूर ने शिक्षा-संस्थान में अध्ययन करते हुए अपने निजी गांव के पुनर्निर्माण को ही अपने शोध-कार्य का विषय बनाया था। कहा जाता है कि उन प्रोफ़ेसरों के बीच, जो ज़हूर का इम्तिहान लेने के लिये बैठे थे, स्थानीय सामूहिक फ़ार्म के मुअज़्ज़िज़ सदर उस्मान चाचा भी थे और आप मान सकते हैं कि उसी दिन उर्कुख़ के पुनर्नियोजन की असली शुरूआत हुई। और ज़रा अब देखिये, चौड़ी सड़कों और घरों को क़रीब-क़रीब छिपा ही लेने वाली फलों के बाग़ों की ताज़ी हरियाली से भरी बस्ती घाटी में फैलती जा रही है! हर चीज़ आंखों को मोह लेती है। नये घर खुले-खुले हैं और खुलापन गांववालों की आत्मा में भी पैठ गया है।

और अब ज़रा उस पुराने आऊल को तो देखिये—पर सिर उठाते हुए ज़रा टोपी थामे रहियेगा! छोटे-छोटे, चिपटे-चिपटाये घर ऐसे लगते हैं, जैसे किसी दैत्य के हाथों पहाड़ में धंसा दिये गये हों। यहां सड़कें इतनी टेढ़ी-मेढ़ी और कम चौड़ी हैं कि मोटरकार तो क्या, बैलगाड़ी भी उनमें से नहीं गुज़र सकती। पेड़ों का नामोनिशान नहीं और परिन्दे तक वहां अपने घोंसले नहीं बनाते। आप कह सकते हैं कि उर्कुख का यह हिस्सा एक झरना है—पर एक पत्थर बन गया झरना, जिस पर इन्द्रधनुष के रंग कभी खेल नहीं खेलेंगे।

अब आइये ज़रा आऊल के बेटे-बेटियों पर भी एक नज़र डालें। जवान और बूढ़े पुराने मकान से नये मकान

में फ़र्नीचर और दूसरा सामान लाने में हाथ बंटा रहे हैं, सोवियत सदन का फ़र्श रगड़-रगड़ कर साफ़ कर रहे हैं और उसकी खिड़कियां धो रहे हैं।

मैं भी इस हटाने-ले जाने के चक्कर में फंस जाता हूं। मैं एक सफ़ेद बालों वाले, चश्मा पहने आदमी की मदद करना चाहता हूं, जो अपने सरकारी पोथों और फ़ाइलों के ढेर को किसी दूसरे को सौंपने का इच्छुक नहीं है। वह मुझे ऊपर से नीचे तक देखता है, पल भर के लिये सोचता है, महसूस करता है कि सब का सब ले जाना उसके अकेले के बूते का नहीं और मेरी सेवा क़बूल कर लेता है। मुझे पता चलता है कि साल-हा-साल वही ग्राम सोवियत का सेक्रेटरी रहा है और उसका नाम दश्तेमीर है, यानी फ़ौलादी पत्थर। पहली नज़र में तो ऐसा लगता है कि वह मिलनसार नहीं है, और रूखा है—और इससे बस यही ज़ाहिर होता है कि पहली नज़र कितनी भरमाने वाली हो सकती है। मेरी शुरू-शुरू की बातचीत के बाद उसमें चुस्ती आने लगती है और वह मुस्कुराने लगता है और बतियाने लगता है। अरे! यह आदमी तो घंटों बातें करता चला जा सकता है—ऐसा आदमी जिसे पहाड़ी लोग "जौ का खुला हुआ बोरा" कहा करते हैं। वह बेशुमार मज़ेदार क़िस्से-कहानियां सुनाता जाता है और उसका नाम "फ़ौलादी पत्थर" उससे उतना ही मेल खाता है जितना बढ़िया घोड़े की ख़ूबसूरत ज़ीन गधे पर फब्ती है।

मैं बुज़ुर्ग सेक्रेटरी की बातचीत सुनते हुए ग्राम के आलेखों के तार-तार हुए, पीले पड़े पोथों को तरतीब दे रहा था कि इसी बीच मुझे चमड़े की जिल्द का एक ऐसा

रजिस्टर दिखाई दिया, जो देखने में क़ुरान से मिलता-जुलता था। मैंने उसे यूं ही खोला, तो देखा कि इसके मटमैले पन्नों पर, अरबी अक्षरों के बजाय, आधुनिक दार्घिन भाषा में लिखा हुआ था, और, जैसा कि मुझे बाद में पता लगा, वह भी उसी आदमी की लिखावट में, जिसके बोल अब भी मेरे कानों में पड़ रहे थे। इस रजिस्टर में आऊल में पैदा होने वाले लोगों की फ़ेहरिस्त थी और यह बात मुझे बड़ी अजीब लगी कि १६३६ के एक दिन उर्कुख़ की जनसंख्या में जिन छ: की वृद्धि हुई वे सभी लड़कियां ही थीं। इनके नाम बता दूं: नसीबा, किस-तमान, ज़ैनब, अशूरा, सकीनत और फ़ातिमा। उस पृष्ठ की ओर इशारा करते हुए मैंने पूछा:

"दश्तेमीर चाचा, क्या इस दिन की आपको याद है?"

बुज़ुर्गवार ने अपना चश्मा उतारा, उसके शीशों को अपने रूमाल से अच्छी तरह साफ़ किया, फिर उसे अपनी नाक पर चढ़ाया, मेरे पास उकड़ूं बैठ गये, रजिस्टर की ओर देखा और हंसते-हंसते ऐसे बेहाल हो गये कि एड़ी के बल पीछे को लोट गये।

"याद? इसे भला मैं कैसे भूल सकता हूं?" उन्होंने उन नामों में से एक पर झट से अपनी उंगली फिराई और कहने लगे: "इसका बाप मेरा दोस्त है। उसने उस दिन को बड़ा कोसा जब हमारे यहां दुपट्टे तो इतने आये और पपाख़ा* एक भी नहीं। 'बड़ा अपशकुन है, बड़ा अपशकुन है' वह बस

---

*पपाख़ा: ऊंची पोस्तीनी टोपी जो काकेशियाई मर्दों के परंपरागत पहनावे का हिस्सा है। — अनु०

यही कहता रहा। 'ये सब दुपट्टे हमारे आऊल के लिये बदक़िस्मती ही लायेंगे। तुम मेरे शब्द टांक लो।' इस बर्बादी के नजूमी को चिढ़ाये बग़ैर मुझ से नहीं रहा गया। इसलिये मैंने उससे कहा, 'जाओ भी, लड़कियां ही हैं, तो क्यों उन्हें कोस रहे हो? और फिर, लड़का पैदा करने के लिये सच्चा मर्द होना चाहिये...' तुम्हें बताऊं, ऐसा मैंने शायद इसीलिये कहा कि मेरे पांचों बच्चे लड़के ही हैं!"

"दश्तेमीर-चाचा, बताओ तो, क्या ये सभी लड़कियां उसी दिन पैदा हुई थीं?"

"इससे भी ज़्यादा, सभी रात में, उसी रात।"

"वे सब ज़िन्दा हैं?"

"कमल की तरह फूल रही हैं!"

"इस समय वे कहां हैं? आप जानते हैं?"

"जानता हूं? हमारे यहां के लोगों के बारे में मुझसे बेहतर कौन जानता होगा?" दश्तेमीर-चाचा सगर्व मुस्कुराये, फिर खिलखिलाकर हंस पड़े। "अरे वाह, बरखुरदार, तो तुम उनमें से अपने लिये दुलहन चुनने के फेर में हो? तो आओ मेरे साथ – मैं तुम्हें उनसे मिला दूं।"

"नहीं, शुक्रिया, मैं ख़ुद मिल लूंगा।"

नसीबा आइने में अपना अक़्स देखती मुस्कराती खड़ी थी। उसके मुस्कराने से उसके गाल का नन्हा-सा तिल गुल में छिप जाता और फिर निकल आता। उसकी बड़ी-बड़ी काली आंखें – और भूलियेगा नहीं, हमारे दार्घिन की लड़कियां अपनी बड़ी-बड़ी काली आंखों के लिये मशहूर हैं – ख़ुशी से चमक रही थीं। उसके रात-से काले गेसू, जो अभी दिन की

सज्जा के लिये गुंथे नहीं थे, उसकी कमर के नीचे तक झूल रहे थे। अपनी सफ़ेद पिनाफ़ोरवाली साफ़-सुथरी स्कूली पोशाक में वह और भी फब रही थी।

जी हां, आईने ने जो उसे बताया, उससे वह बहुत ख़ुश थी।

"नसीबा!" खुली खिड़की में से किसी लड़की की-सी आवाज़ आई।

"आई!"

जल्दी से उसने अपनी किताबें चमड़े के पीले बस्ते में डालीं, जो उसे रीता नाम की एक रूसी लड़की ने दिया था, जो उनके यहां रहती थी और गांव का शफ़ाख़ाना चलाती थी। एक दुखभरी "आह" के साथ नसीबा को याद आया कि रीता तो आज जाने वाली है और खुली खिड़की से हौले-से उछल कर बालकनी से होती हुई वह दूसरे कमरे में चली गई।

रीता को उसके पूरे नाम, मर्गारीता से कोई नहीं बुलाता था। डाक्टरी की अपनी पढ़ाई ख़त्म करके वह उर्कुख़ आ गई थी। गांववाले उसे प्यार करते थे, क्योंकि दिन हो या रात, किसी भी वक़्त जब उसकी ज़रूरत हो, बुलाये जाने पर, वह तुरन्त और ख़ुशी-ख़ुशी जाती थी। "रीता शहद की मक्खी की तरह है", लोग कहते थे। "उसका दिल शहद से लबालब है और शहद की मक्खी के डंक वाला इलाज उसकी सुइयों और बोतलों में है।"

रीता नसीबा से कुछ बड़ी थी पर वह उसके साथ हमउम्रों जैसा ही बर्ताव करती थी और नसीबा उस नीचे, गद्देदार तख़्त पर अपनी भूरे बालोंवाली सहेली के गले में हाथ

डाले बैठी ही रह जाती, अगर रीता ने याद न दिलाया होता कि उसे स्कूल को देर हो जायेगी।

"मैं तो तैयार हूं... तुम बहुत याद आओगी। जल्दी वापस आना!"

नसीबा अपने कमरे में लौट आई, झट से आईने के पास गई और जल्दी-जल्दी अपने लम्बे बाल संवारे। केशसज्जा ख़त्म होने को ही थी कि सामने के कमरे से, जहां गड़रिये हबीब का परिवार खाना खाया करता था, उसकी मां ने बुलाया।

हबीब कुछ ही दिन पहले किजलर स्तेपी की कड़ी सर्दियां बिताकर पहाड़ के चरागाह वापस आया था, जहां बसन्त अपना हरा कालीन खोलने में लगा था।

नसीबा का बाप यूं लम्बा तो नहीं था, पर उसकी काठी इतनी मज़बूत थी कि गड़रियों में कुछ ही ऐसे थे, जो पत्थर फेंकने के परंपरागत खेल में उससे बाज़ी ले पाते थे। उसकी मूंछें बड़ी जबर्दस्त थीं– उनकी नोकें तब भी दिखाई पड़ सकती थीं, जब उसका मुंह दूसरी ओर हो। इसलिये लोग उसे बड़मुच्छा हबीब कहा करते थे। उसके बायें गाल के एक ओर से दूसरी ओर तक एक लम्बा घाव का निशान था। उसने तो उसके बारे में कभी नहीं बताया पर उसके लड़ाई के ज़माने के साथियों से हमें पता लगा कि ऐन विजय दिवस की रात में राइख़स्ताग* की दीवारों के पास उसे एक गोली लगी थी।

इस समय वह सुबह की नमाज़ (फ़ज्र) के लिये

---

*राइख़स्ताग : जर्मन पार्लियामेंट।–अनु०

वजू करती अपनी बीवी शमाई को कनखियों से देखते हुए बेचैनी के साथ कमरे में चहलक़दमी कर रहा था।

"कितनी ही बार तुमने नसीबा के मुंह पर उसकी बड़ाई की है, मज़ाक में या संजीदगी से," सुराही से कठौती में पानी उंड़ेलते शमाई बोली।

"और मैं अब भी ऐसा ही करूंगा," हबीब ने कहा। "उसके हाथों में नसीबा को सौंपते मेरे दिल को इतमीनान रहेगा।"

"तब फिर हिचकिचाहट क्या है तुम्हें?"

हबीब ने जवाब नहीं दिया। वैसे लगा तो कि बुढ़िया ठीक ही कह रही है, और इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि वह एक स्नेहमयी सजग मां है। इसीलिये उसके हां और न पलड़े में बराबरी पर ही झूल रहे थे...

अपने बालों को ठीक करती तितली-सी हलकी-फुल की नसीबा दरवाज़े में दाख़िल हुई।

"तुमने बुलाया था, मां?"

"बैठो, बिटिया। हम लोग बड़ी संजीदा बात कर रहे हैं," पानी की कठौती में अपने पैर रखते हुए शमाई ने कहा। उसकी एड़ियों में बिवाइयां फटी थीं, जैसे गरमी के दिनों में ताप से धरती में दरारें पड़ जाती हैं।

"मगर मुझे स्कूल को देर हो जायेगी।"

नसीबा अपनी मां की लगातार दी जाने वाली नसीहतों से ऊब चुकी थी। उसका बाप अव्वल तो उससे ज़्यादा बोलता नहीं था और अगर बोलता भी था तो जैसे कुछ मज़ाकिया लहजे में। पर उसके बारहवें जन्मदिन के बाद से—और पहाड़ों में तो आज भी लड़की १२ साल की उम्र में सयानी

मानी जाने लगती है — उसकी मां हमेशा उसे लेक्चर झाड़ती रहती थी और उसपर पाबन्दियां लगाती रहती थी।

नसीबा की स्कूल की हमजोलिनें, किस-तमान, सकीनत और ज़ैनब काफ़ी देर से दरवाज़े के बाहर उसका इन्तज़ार कर रही थीं।

किस-तमान भी एक अजीब नाम है। शाब्दिक रूप से इसके मानी हैं "अब लड़कियां न हों!", और इधर के लोग परिवार की हर चौथी लड़की का यही नाम रखते हैं। यह नाम कम और मनौती ज़्यादा है कि उस परिवार में अब लड़कियां न पैदा हों। हमारी किस-तमान उर्कुख़ के डिपार्टमेंट स्टोर के मैनेजर ज़ुल्फ़िक़ार की चौथी लड़की थी। कोई नहीं कह सकता कि वह अपनी चारों लड़कियों को प्यार नहीं करता। बल्कि वह उनसे जोशोख़रोश के साथ बहस करेगा, जो लड़कों को तरजीह देते हैं और इस बात पर ज़ोर देगा कि इन्सान की औलाद लड़का हो या लड़की, दोनों की पैदाइश ख़ुशी की बात है और उसे धूमधाम से मनाना चाहिये। पहली तीन लड़कियों की पैदाइश पर ख़ुशियां मनाई भी गई थीं, पर किस-तमान के पैदा होने के कुछ ही घण्टों बाद उसकी मां का इन्तक़ाल हो गया इसलिये उस बार वह सब नहीं हो पाया। तब फिर उसने अपनी लड़की का यह नाम क्यों रखा? क्या इस बात का विचार किये बिना ही कि नाम का क्या अर्थ होता है वह परम्परा के पीछे-पीछे चला? या मुमकिन है कि पुराने रीति-रिवाजों और उनके मानने वालों को यह उसकी चुनौती हो, यह पक्का इरादा कि वह अपनी इस बच्ची को एक मज़बूत और समझदार इन्सान बनाकर दिखा देगा, ऐसी जो कई मर्दों से ज़्यादा इनसान

कहलाने की हक़दार हो? और क्या सचमुच यह दिखाने के लिये ही कि नाम में कुछ नहीं धरा, कि जो चीज़ मानी रखती है वह है सिर न कि उसके ऊपर रखा जाने वाला पपाखा या दुपट्टा? कम्युनिस्ट ज़ुल्फ़िकार का कहना था कि इनसान दुनिया में तेज़ी से भागती परछाई की तरह नहीं, बल्कि सब की भलाई के लिये आता है।

किस-तमान अपनी सखियों से लम्बी है। उसके ऊंचे माथे, तोते-सी नाक और भरपूर होंठों पर गहरे भूरे रोम से उसमें कुछ मर्दानापन ज़रूर आ जाता है, मगर उसकी नीली आंखें, जो इधर के लोगों के मुश्किल से ही होती हैं, दार्घिन के आसमान की कोमल आभा संजोये हैं। आऊल में बहुतेरे ऐसे हैं, जो उसे उसकी खरी, दो टूक बातों की वजह से पसन्द नहीं करते, मगर उनसे कहीं ज़्यादा ऐसे हैं, ख़ास तौर से नई उम्र के लोग, जो खुले दिमाग़ और व्यापक अध्ययन के कारण उसकी प्रशंसा करते हैं—और शायद उसकी उन नीली आंखों के कारण भी। और ज़ुल्फ़िकार को अपनी दृढ़, खरी-खरी बात कहनेवाली लड़की पर गर्व है।

हबीब के बग़ीचे की बाड़ पर कोहनी टेके खड़ी ज़ैनब किस-तमान से एकदम उलटी है। उसके मां-बाप बचपन में ही मर गये थे और उसकी परवरिश यतीमख़ाने में हुई है। वह नाटी और मोटी है और असाधारण रूप से गोरी है—कुछ उस तरह की, जिनके बारे में दार्घिनवालों का कहना है कि "वह ऐसी लोई से बनी है जिसमें उसकी मां का दूध पड़ा है।" शर्मीले स्वभाव के अलावा वह हकलाती भी है और यही वजह है कि वह ज़्यादा नहीं बोलती; और बोलती है, तो लजाते हुए।

सकीनत शायद उन सब में सबसे आज़ाद मिज़ाज की है। उसका बाप तक उसे "बिना खूंटे की बछिया" कहा करता है। क़द उसका नसीबा जितना ही है—यानी ज़ैनब से तो लम्बी, पर किस-तमान जितनी लम्बी भी नहीं। गोल मुंह, मज़बूत काठी और खेत का काम पसन्द करनेवालों के-से सख़्त हाथ। पड़ोस के सामूहिक फ़ार्म के सदर मुस्तफ़ा के लड़की तो वही एक है मगर उसके भाई पांच हैं। पुराने ज़माने में—पहाड़ी लोगों में जब तक हरिणी जैसी नाज़ुक-बदन, छरहरी लड़कियों को सराहने का चलन नहीं हुआ था—लोग सकीनत जैसी "त्सुदाख़ार के गुलाबी सेबों-से गालों वाली" हृष्ट-पुष्ट और साहसी सुन्दरियों की प्रशंसा के गीत गाया करते थे। फिर भी, जैसा कि होता है, सकीनत को एक ऐसा युवक प्यार करता है जिसे सुरुचि के बारे में प्रमाण ही माना जा सकता है। पर, जैसा कि लोग कहा करते हैं, अलग-अलग रुचियों का कोई अन्त नहीं, यहां तक कि दोस्तों में भी। तो भी, सकीनत अपने दिल की बात ज़ुबान पर नहीं लाती। उसके होंठ हमेशा नम, अधखुले, उत्सुकताभरे रहते हैं। ऐसा लगता है कि उसके पुष्ट कुच उसकी झीनी पोशाक फाड़ कर बाहर निकल आयेंगे। दूसरी लड़कियों से अलग, वह कानों में कुबाची के ज़रदोज़ी के काम की बड़ी-बड़ी बालियां और मोतियों का हार पहनती है। उसकी कमीज़ की गोट के नीचे से उसकी शलवार के किनारे झांकते हैं।

यह नसीबा और अकेली नसीबा ही थी, जो इस चौकड़ी को एक सूत्र में बांधे थी, जिसमें सबका स्वभाव एक

दूसरे से बहुत जुदा था; वही थी कि उनमें सन्तुलन और अनुरूपता बनाये रहती थी और उन्हें साथ-साथ काम करने को प्रेरित करती रहती थी। और अब तीनों बड़ी अधीरता और उत्कण्ठा से उसका इन्तज़ार कर रही थीं।

"नसीबा!" किस-तमान ने दूसरी मंज़िल की एक खिड़की की ओर देखते हुए आवाज़ दी। "आओ! हमें देर हो जायेगी!"

नसीबा खिड़की में नहीं दिखाई दी और इस आवाज़ का कोई जवाब नहीं मिला।

टापों की खट् खट् हुई और सामने वाले फाटक से एक सवार तेज़ी से निकला, साफ़ लग रहा था कि वह अपने घोड़े की चाल दिखा रहा था। लड़कियां आवाज़ पर घूमीं और सवार उनके पास से होकर उनकी तरफ़ सिर हिलाता हुआ पहाड़ी चरागाहों को जानेवाली सड़क पर घोड़े को भगाने लगा, जहां से बदलती हवाएं ताज़े खिले जंगली फूलों की सुगन्ध के झोंके बहा कर लाती थीं।

यह बांका घुड़सवार उसी दिन पैदा हुई पांचवीं लड़की, फ़ातिमा, का शौहर झामाव था। कुछ समय पहले ही फ़ातिमा के मां-बाप ने उसे स्कूल छोड़ने और अपने ही रिश्ते के एक भाई से शादी करने पर मजबूर कर दिया था। गड़रिया झामाव अक्सर अपने दोस्तों से कहा करता था, "मैं आसमान के तारे तो नहीं तोड़ता—मगर मैं धूल में भी नहीं लोटता।" वह ऐसा कुछ नहीं करता था, जो रस्मोरिवाज़ के ख़िलाफ़ हो और उसने अपनी ज़िन्दगी में कभी कोई नयापन लाने का विचार भी नहीं किया। दरअसल वह एक पुरानी घड़ी की तरह था, जिसे नये चमकदार खोल में रख दिया गया

हो, या एक भट्टी की तरह, जिसका मुंह खुला रह जाय श्रौर गर्मी श्रन्दर रुकी न रह सके।

उसके घोड़े के खुरों के नीचे से धुएं जैसी धूल के बगूले उड़ रहे थे श्रौर लगता था जैसे सड़क को श्राग लग गई है। सकीनत ने सड़क की श्रोर देखते हुए कहा :

"फ़ातिमा को भी ख़ूब शौहर मिला है! मैंने सोचा भी नहीं था कि वह ऐसा बांका निकलेगा।"

"हां, बहनो," किस-तमान ने श्राह भरते हुए कहा, "यह सोच कर कितना दुख होता है कि फ़ातिमा श्रब हमारे साथ कक्षा में कभी नहीं बैठेगी। श्रौर सोचो तो, कि महज़ दो-तीन महीनों में वह दसवीं जमात पास कर गई होती।"

"श्रब ये साइन-कोसाइन श्रौर इसी तरह की श्रौर चीज़ें उसके भला किस काम की?" श्रपनी नज़र श्रब भी सड़क पर गड़ाये सकीनत बोली, गो कि धूल श्रब बैठ चुकी थी श्रौर वह युवा सवार श्रांखों से श्रोझल हो चुका था। "सुना है कि श्रगले जाड़े में जब वह 'काली माटी' के चरागाहों की श्रोर जायेगा, तो वह भी उसके साथ जायेगी। श्रब उसे किताबों की क्या फ़िक्र? .. श्रौर यह ज़िन्दगी है भी ख़ूब। मैं ख़ुद रेवड़ के पीछे-पीछे जाना पसन्द करूंगी।" उसने एक गहरी श्राह भरी श्रौर कहा, "श्रौर मुझे सामूहिक फ़ार्म का काम तो बस, बहुत ही श्रच्छा लगता है।"

"तुम्हें गड़रियों की श्रावारा ज़िन्दगी पसन्द है?" किस-तमान ने हंसते हुए पूछा।

"हां, है—श्रौर इसमें हंसने की कोई बात नहीं।"

"श्रौर महज़ इसलिये कि तुम्हें श्रपने शौहर के साथ

घूमने को मिलेगा तुम शादी कर लोगी?" किस-तमान ने चिढ़ाया।

"इसमें बुराई ही क्या है?" सकीनत ने अचरज भरे लहजे में पूछा।

किस-तमान ने जब यह महसूस किया कि उसकी सहेली मज़ाक नहीं कर रही है, तो उसकी आंखें ग़ुस्से से तमतमा उठीं। "तुम पागल हो," उसने कहा। "ज़रा सोचो तो कि आठवीं में हम कितनी लड़कियां थीं– बारह! और अब, दसवीं में सिर्फ़ पांच रह गईं। याद है, हम लोगों ने क़सम खाई थी कि हम स्कूल नहीं छोड़ेंगी–और तब भी तुम ऐसी बातें करती हो!"

"वह तो ठीक है," ज़ैनब, हकलाना बचाती हुई, हौले से बोली। "मगर दिल में जो बात है, उसे इस तरह का वादा कैसे ख़त्म कर सकता है?"

"जहां तक मेरी बात है, मैं स्कूल नहीं छोड़ूंगी। और तुम भी नहीं। क्यों, है न ज़ैनब?" किस-तमान ने पूछा, मगर उसे इसका गुमान भी नहीं था कि ज़ैनब ने, जो लाज से लाल हुई जा रही थी, ख़ुद अपने ही दिल की बात कही थी।

"यह सब तुम्हें ही मुबारक़, किस-तमान," सकीनत ने छूटते ही कहा। "तुम तो स्कूल में ठीक चल रही हो। मगर हम–भई, हम तो तुम्हारी कॉपी में से घर के काम की नकल करते-करते ऊब चुकी हैं। हम अपना समय क्यों बर्बाद करें, जब हम तुम्हारी तरह ज़हीन नहीं हैं? जो एक लड़की के लिये ठीक है, वह दूसरी के लिये भी ठीक हो यह ज़रूरी नहीं...और फिर, खेतों में काम करने में ख़राबी

क्या है? मुमकिन है मेरा मन हो कि मैं फलों की खेती सीखूं, ताकि सामूहिक फ़ार्म के फलों के बाग़ों की फ़सल हर साल बेहतर हो। अगर मैं ऐसा काम न करूं और कोई और भी न करे, तो क्या दाग़िस्तान को फलों का फलता-फूलता बाग़ बनाने का ज़िम्मा अल्लाह ताला को सौंप दिया जाय?"

"अरे, तो इतना चिल्ला क्यों रही हो," किस-तमान ने धीरे से कहा। "चुभ क्या रहा है तुम्हें?"

"बस जब तुम इस तरह की बात करती हो, तो मुझे ताव आ जाता है। ख़ुद तुमने तो सामूहिक फ़ार्म में कभी कोई काम किया नहीं, इसलिये तुम क्या जानो उसके बारे में? मुझे ख़ुशी है कि मेरे अब्बा ने मुझे छुट्टियों का वक़्त कभी बरबाद नहीं करने दिया... नहीं, बहनो, तुम बस समझती ही नहीं। हर एक को अपने सितारे के पीछे-पीछे जाना पड़ता है, और शायद विज्ञान मेरा सितारा नहीं है।"

"तब फिर तुम स्कूल क्यों आती हो?" किस-तमान चिल्लाई।

"मैं... मैं नहीं जानती," सकीनत ने सफ़ाई से झूठ बोला। दर्जे में वह अपने आशिक़ सुलेमान के सेना से वापस लौटने के दिन गिनती रहती थी। "अरे, बहनो, बाग़ों में काम करने में बड़ा मज़ा आता है। बदन पसीने से तर-ब-तर हो जाता है, देह दर्द कर रही होती है, मगर दिल गाता है। और ऐसे काम के बाद नींद भी क्या ख़ूब आती है!" सकीनत ने अपने हाथ सिर के ऊपर उठाये और बड़ी शान से अंगड़ाई ली।

"और मेरे ख़्याल में नींद तब और अच्छी आती है, जब प्रिय साथ सोता भी हो?" किस-तमान ने चुटकी ली।

"मैं नहीं जानती कि तुम्हारा इशारा किधर है, और जानना भी नहीं चाहती... और मेरी जान किस-तमान, तुम ज़ैनब पर भी ज़्यादा भरोसा मत रखो। वह भी पहले ही सांठगांठ लगा चुकी है।"

यह ख़बर तो वज्रपात-सी ही थी।

इस विश्वासघात से स्तब्ध ज़ैनब उलाहना भरी नज़रों से सकीनत को देखती हुई ऐसे सिर लटकाये रही, जैसे कोई बच्चा ग़लत काम करते पकड़ा गया हो।

"क्या यह सच है?" किस-तमान ने मुंह बाये पूछा। 'ऐसा तो हो ही नहीं सकता। ज़ैनब, भला तुम यह कैसे...?"

"मगर है तो यह सच ही। और जल्दी ही इसकी शादी में हम नाचेंगी... जानती हो, यह किससे शादी कर रही है?"

किस-तमान ने ग़ुस्से में मुंह फेर लिया और बोली: "मैं नहीं जानना चाहती। बस अपने ही तक रखो।"

"अरे सुर्ख़ाई से–गड़रिये सुर्ख़ाई से," सकीनत ने बता कर ही छोड़ा। "याद है न–वही छोकरा जिसने पिछली गर्मियों में हमारे वे फ़ोटो खींचे थे। हम लोग भी अचरज में थे कि ज़ैनब उनमें सबसे उभरी-उभरी क्यों आई थी। देखा तुमने, हर चीज़ प्यार की विरासत हो सकती है, फ़ोटोग्राफ़ी तक।"

बातचीत में घसीटे जाने से बचने की नीयत से ज़ैनब अपनी सहेलियों से कुछ क़दम दूर हट गई। वह रास्ते की ओर देख रही थी, जिसपर कई औरतें खेतों की निराई करने जा रही थीं। फिर उसकी आंखें ऊपर वाले चरागाहों की ओर घूम गईं, जहां दूर से ऐसा लगता था कि भेड़ों के

रेवड़ धीरे-धीरे हिलते-डोलते धब्बे जैसे हैं। एक गड़रिया उनके पास ही खड़ा था—कहीं सुख़ाई ही तो नहीं?

सकीनत ज़ैनब के नज़दीक जाकर उससे पूछने लगी: "तुम मुझसे नाराज़ तो नहीं हो, कि हो?" ज़ैनब की हर सहेली उसके साथ ख़ास तौर से शराफ़त से पेश आती थी, क्योंकि वे जानती थीं कि बच्चा भी उसे चोट पहुंचा सकता है।

"तो हमारी टोली में अब कोई भी नहीं बचा सिर्फ़ तुम्हें, मुझे और नसीबा को छोड़ कर," किस-तमान ने अफ़सोस ज़ाहिर किया। "जहां तक मेरी बात है, मैंने तो अपने मन में तय कर लिया है कि मैं पढ़ूंगी और डिगरी लूंगी..."

एक चरचराहट के साथ हबीब का फाटक खुला और लड़कियां अन्दर को भागीं। पर नसीबा न होकर वह थी "डॉक्टर" रीता। उसके हाथ में एक सूटकेस था। आऊल में हर कोई जानता था कि पिछली शाम उनकी "डॉक्टर" को एक तार मिला था कि उसके पिता सख़्त बीमार हैं।

"तो तुम जा रही हो, रीता?"

"और कोई चारा भी तो नहीं।"

किस-तमान ने रीता से हाथ मिलाया, उसका रास्ता सलामती से कट जाने की तमन्ना की और उम्मीद की कि वह पहुंचेगी तो अपने पिता को बेहतर पायेगी। रीता ने उसका शुक्रिया अदा किया, फिर घड़ी की ओर देखते हुए कहा: "तुम लोग जल्दी जाओ, वरना देर हो जायेगी।"

"हम नसीबा का इन्तज़ार कर रही हैं।"

"कुछ देर पहले तो वह तैयार थी – कपड़े वग़ैरह पहने थी जब मुझसे विदा लेने आई थी। बेहतर हो कि उसे ज़ोर से पुकारो और जल्दी करने को कहो... अच्छा, अलविदा लड़कियो।"

"जल्दी वापस आना!"

आऊल के पुराने हिस्से की ओर से जाने वाले रास्ते से रीता चल दी और जब वह सोवियत सदन के चौक पर पहुंची, तो वहां उसे सामूहिक फ़ार्म की एक जीप इन्तज़ार करती मिली। एक जवान नीचे कूदा, उसने रीता का सूटकेस पीछे वाली सीट पर रखा और अदब के साथ उसके लिये दरवाज़ा खोल दिया। इनमें से कोई भी बात सकीनत की नज़रों से अछूती न रही।

"आओ, लड़कियो," किस-तमान बेसब्री से बोली। "चलो, एक साथ नसीबा को पुकारें।"

"न-सी-बा!"

एक खुली खिड़की में से नसीबा का चेहरा दिखाई पड़ा। पर क्या यह नसीबा ही थी? उसकी बड़ी-बड़ी काली आंखों में ख़ुशी का नामोनिशान न था। उसके ख़ूबसूरत संवलाये चेहरे से मुस्कुराहट ग़ायब थी। मधुर कण्ठ वाली नसीबा की आवाज़ का ग़म अन्दाज़ से परे था। ऐसा लगा जैसे हरे-भरे मैदान की अच्छी ख़ासी सूरत पर अचानक ठंडे कोहरे का कफ़न पड़ गया हो या तूफ़ान के आ जाने से पखेरू का गीत दब गया हो।

"मैं नहीं आऊंगी, बहनो।" नसीबा की आवाज़ सिसकियों में घुटी-घुटी-सी थी। "मेरे बिना ही चली जाओ।"

लड़कियों ने गुपचुप आंखों ही आंखों में इशारे किये।

नसीबा की बात पर शायद नाराज़ी भरी चिल्लाहटों और सवालों की बौछार हो जाती, पर तभी हबीब भी अपनी लड़की के बग़ल में खिड़की में आ गया और लड़कियां उदास-उदास आगे बढ़ गईं।

"ओह! मेरा ख़याल है, मैं समझ गई," सकीनत ने जानकारी भरी मुस्कराहट के साथ कहा। "पर मैं कुछ कहूंगी नहीं। वरना तुम फिर मुझसे नाराज़ हो जाओगी।"

"अगर तुम्हें पता है, तो बात को अपने तक ही रखना ठीक नहीं," लड़कियों ने विरोध किया। "चलो—बताओ!"

"उन्होंने उसकी शादी तय कर दी है।"

"तुम और तुम्हारी शादियां," किस-तमान छूटते ही बोली। "तुम्हारे दिमाग़ में लड़कों और शादियों के सिवा कुछ नहीं है।"

"और नहीं, तो फिर वह इतनी बदल कैसे गई? बोलो न—तुम्हीं कहो क्यों भला!"

"शायद सकीनत ठीक कह रही है," ज़ैनब ने हिम्मत करके कहा। "कल नसीबा की मां को मैंने एक पड़ोसी से बात करते सुना था। दरअसल मेरी सुनने की नीयत तो नहीं थी, पर मैंने शादी के बारे में कुछ बातचीत होते सुनी ज़रूर थी।"

नसीबा खिड़की पर ही खड़ी रही। अपने आंसुओं के बीच से वह अपनी सहेलियों को तब तक देखती रही, जब तक वे एक बग़ल वाली गली में मुड़ नहीं गईं। और वसन्त अपने चमकीले, ओर-छोर से शून्य सप्राण कालीन को और ख़ूबसूरत बनाने के फेर में अपने करघे पर बड़ी तेज़ी से

ताना-बाना बुनने में लगा रहा। सूरज पहाड़ों के काफ़ी ऊपर चढ़ आया था। मन्द बयार में गन्धवाही सेब के वृक्ष अपने सफ़ेद फूलों के गजरे लिये नसीबा की ओर हाथ हिला-हिलाकर इशारा कर रहे थे और कलियों में भौंरों की गुनगुनाहट ऐसी लग रही थी मानो टहनियां न होकर किसी वाद्य के ख़ूब कसे तार हों। सफ़ेद छाती वाली अबाबीलें झपट्टा मार कर नीचे आतीं और फिर झट से ऊपर चली जातीं, अभी आसमान में तो अभी ज़मीन बुहारती हुई।

और कहीं दूर, बहुत दूर, से पपीहे की दर्द भरी कूक आई, मदद के लिये की गई उस गुहार की तरह जिसका कोई जवाब नहीं मिला, या उस दोशीज़ा के विलाप की तरह जिसका दिल टूट गया है...

नसीबा खिड़की से हट आई और अपने बाप के सीने से मुंह सटा कर और फफक-फफक कर अपना दुख उड़ेलने लगी। हबीब ने अपने सख़्त लेकिन हलके हाथ से उसके बाल सहलाये। फिर उसने अपने हाथ उसके कन्धों पर रखे और उसकी ओर नर्मी से ताका। अपने दिल में होनेवाले दर्द ने उसे बताया कि अगर किसी अजनबी की वजह से उसकी लड़की को यह दुख मिलता— तो उसकी शामत आ जाती! उसने अपने आप से पूछा कि आख़िर उन्हें अपनी लड़की को क्यों दुखी करना पड़ रहा है? काश, अब भी, वह उससे कह पाता: "यह तो महज़ एक मज़ाक था, मेरी बच्ची— जा, भाग, अपनी सहेलियों को पकड़ ले!".. फिर भी, अब वह बच्ची तो रह नहीं गई है, शादी-ब्याह के चक्कर में रहने वाले लोगों की नज़रों में वह चढ़ चुकी है और वे दरियाफ़्त करते हैं कि वह किस खानदान की है...

वह उसकी इकलौती लड़की थी और वह उसके सुख के सिवा और कुछ सोच ही नहीं सकता था। और इसका मतलब था कि उसके भविष्य का फ़ैसला अभी कर देना चाहिये – अभी, किसी बदमाश के उसे फुसला कर भगा ले जाने के पहले। अगर कहीं वैसा हो गया, तो वे ज़िन्दगी भर अफ़सोस और आत्मग्लानि में हाथ मलते रह जायेंगे... और यह जो उमलात है, अच्छा-ख़ासा क़ाबिले-एतबार लड़का है। बहुत दिनों से उसकी उसपर नज़र थी। हां, लड़का बढ़िया है!

"हां, मेरी बेटी, वह लड़का बढ़िया है," उसने ज़ोर से दुहराया। "उस दिन की दौड़ की याद है, जब हम लोग सर्दियों वाले चरागाहों से लौटे थे? बहुत लड़कियां वहां थीं, नहीं थीं क्या? पर वह तू ही थी जिसे उसने अपना इनाम में जीता दुपट्टा नज़र किया था। और बाद में भी मैं उसे शाम को अपने घर के काफ़ी चक्कर लगाते देख चुका हूं। यह मत कहो कि तुमने यह सब नहीं देखा। या फिर, बिटिया, तुम्हारा यह ख़याल है कि वह तुम्हारे अब्बा की मशहूर मूंछों की तारीफ़ करने के लिये चक्कर लगाया करता था?"

इस बीच शमाई जानमाज़ पर झुकी हुई थी, उसकी नीम बाज़ आंखें अपने शौहर पर और लड़की पर लगी थीं और उसके होंठ बिना आवाज़ के और तेज़ी से हिल रहे थे, मानो वह जल्दी-जल्दी नमाज़ निपटाना चाहती हो, ताकि उस बहस में कूद सके।

अपनी उम्र के लिहाज़ से उसका गठन अच्छा था और वह ख़ूब काम करती थी। यह सोच कर सबको अचरज होता था कि अपनी धार्मिक कट्टरता के बावजूद वह सामूहिक फ़ार्म के सबसे अच्छे काम करने वालों में है। कुछ वक़्त

के लिये पासपोर्ट के आकार के फ़ोटो से सुर्ख़ाई द्वारा बड़ा बनाया गया उसका चित्र आऊल के सम्मान फलक पर लगा रहा था। कोई भी इसपर गर्व करता, पर शमाई ने उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले और कहा: "अगर, जैसा कि तुम कहते हो कि फ़ोटो में कोई बुराई नहीं, तो अल्लाह ने अपना फ़ोटो हमारे लिये भी क्यों नहीं रख छोड़ा?"

ग्राम क्लब में काम करने वाले हिज़री ने, जो ज़रा मसख़रा-सा लड़का था और जिसे "हमारा एक्टर" कहा जाता था, यह तर्क सुन लिया और जवाब में कह बैठा:

"भई, हुआ यह कि अल्लाह का किसी ने फ़ोटो ही नहीं खींचा। खींचते भी काहे को? उसके पास पासपोर्ट तो था नहीं कि उसमें अपना फ़ोटो लगाता।"

इस पर बड़े ज़ोर की हंसी हुई, पर शमाई को इस तरह अल्लाह का मज़ाक़ उड़ाया जाना बहुत बुरा लगा। पहले "हमारे एक्टर" के बारे में उसके बड़े अच्छे ख़यालात थे और उसे ऐसा कहते भी सुना गया था कि वह बतौर दामाद के भी बुरा नहीं होगा, पर उस दिन के बाद से हिज़री के नाम का ज़िक्र भी उसे बर्दाश्त न था।

शमाई तुनुकमिज़ाज और झगड़ालू थी, पर हबीब पिछली चौथाई सदी से उसी घर में उसके साथ रह रहा था– और, लोग जितना मुमकिन समझते थे, उससे ज़्यादा शान्ति के साथ। बुरा चाहने वालों और भला चाहने वालों दोनों ने हबीब को अनेक बार उसे तलाक देने की सलाह दी होगी, पर वह सिर ही हिलाता रहा। वह महसूस करता था कि तलाक मर्द के लिये शर्म की बात है और यह आदमी की कमज़ोरी है अगर वह अपनी बीवी को ठीक से नहीं रख

सकता और एक ऐसी बात का हल नहीं निकाल पाता, जो कोई बहुत दुश्वार नहीं है। एक औरत से बहस-मुबाहसा या झगड़ा करना उसकी शान के ख़िलाफ़ था। शमाई भी यह बात ख़ूब अच्छी तरह जानती थी और इस बात का पूरा ख़याल रखती थी कि उसके सामने ज़बान क़ाबू में रहे। बावजूद इसके उसे अपने हक़ भी ख़ूब पता थे और यद्यपि वह पक्की मुसलमान थी पर वह शरअ की अपेक्षा सोवियत संघ के संविधान के अनुसार रहना ज़्यादा पसन्द करती थी और अपने उन अधिकारों के बारे में रत्ती-रत्ती जानती थी, जो उसे उसके द्वारा हासिल थे।

इस बीच हबीब अपनी लड़की को समझा रहा था: "पर तुम ख़ुद ही तो ख़ुशी के मारे बकरी की तरह उछलने-कूदने लगी थीं जब उमलात दौड़ में सरपट घोड़ा दौड़ाता सबसे अव्वल आया था।"

"मैं उसके ख़िलाफ़ कुछ नहीं कह रही, अब्बा," वह मिन्नत करती बोली।

इसी मौक़े पर शमाई की नमाज़ ख़त्म हो गई। जान-माज़ लपेटती वह अपने शौहर से मुख़ातिब हुई।

"अपनी इस लड़की को तुम कितना चौपट कर रहे हो!.. बैठो और अपना नाश्ता करो, वरना काम पर जाने में देर हो जायेगी। और सब जा चुके हैं। सामूहिक फ़ार्म ने इस साल बड़ी योजना हाथ में ली है और फ़सल भी अच्छी-ख़ासी होगी। बड़ा ही अच्छा हो अगर हम ज़्यादा से ज़्यादा काम के दिन जुटा सकें... और जहां तक तुम्हारी बात है, नसीबा, यह सुड़ुक-सुड़ुक कर रोना बन्द करो। तुम कोई नादान लड़की नहीं रह गई हो, शादी करने लायक़

उम्र की औरत हो। बहुत सारे छोकरों की नज़र तुम्हारी ओर घूमती है! मैंने तो यहां तक सुना है कि वह बदमाश हिज़री तुम्हारे हाथ के लिये अपने रिश्तेदारों तक को भेजने के फेर में है। पर उससे कोई फ़ायदा नहीं निकलने का। फिर यह हिज़री है क्या? तूफ़ान जो उसकी खिड़की से घुसे, तो दरवाज़े से ख़ाली हाथ निकल जाये – कुछ हो भी वहां लेने को? पर ज़रा उमलात की बात सोचो! . ." उसने कॉफ़ी उंड़ेली और उर्बेश* की एक तश्तरी मेज़ पर रखी।

"रो मत, मेरी अज़ीज़ा," हबीब ने अपनी लड़की का झुका सिर थपथपाया। "मैं जानता हूं कि अपनी सहेलियों और स्कूल से बिछुड़ते बड़ी तकलीफ़ होती है, पर कोई अपनी सारी ज़िन्दगी स्कूल में ही तो नहीं गुज़ार सकता। आख़िर तुम नौ बरस स्कूल में पढ़ी हो, और हमारे आऊल में और कितनी लड़कियां हैं, जो इतना भी पढ़ी हैं? . ."

"दुपट्टा ओढ़नेवालियों को पढ़ना-लिखना भर आ जाये, उन्हें और कुछ नहीं चाहिये," बड़ी-सी बाटी के टुकड़े तोड़ते हुए शमाई ने एलान किया। उंगली हिला-हिला कर अपनी लड़की को धमकाते हुए उसने अपनी बात जारी रखी: "आगे से सारे ज़माने के सामने गाने और ख़ानदान की नाक कटाने की कोई ज़रूरत नहीं।"

नसीबा एक शब्द नहीं बोली, बस वह बुरी तरह रोती ही रही। ऐसा लगने लगा कि वह पल दूर नहीं, जब हबीब का इरादा कमज़ोर पड़ जायेगा।

---

* दाग़िस्तानी पकवान, जो सन के भुने हुए बीजों, शहद और मक्खन से बनता है। – सं०

"अरे, मेरी बच्ची," उसने दुख के साथ कहा, "तुम्हारी मां और मैं, हम दोनों ही, बूढ़े और कमज़ोर हो चले हैं, और चाहते हैं कि मरने से पहले अपनी गोद में एक नाती– या फिर नतिनी ही सही– खिलायें।"

"यह अच्छा ही है, बिटिया, तुम रोकर अपना जी हलका कर लो। हम औरतों की तक़दीर ही में यह है–हम शादी करें तब रोयें, बच्चे जनें तब रोयें; अपने मर्दों को लड़ाई पर जाने के लिये विदा करें, तब रोयें। हमारे आंसू धरती पर बरसात की तरह पड़ते हैं... और यह कभी मत भूलो: तुम्हारे मां-बाप कभी तुम्हारा बुरा न चाहेंगे... अच्छा, अब अपना नाश्ता कर लो। तुम्हारे लिये हमने जिसे चुना है, वह बड़ा नेक इन्सान है। उसके ही जैसे लोगों के बारे में कहा गया है कि 'वे जौ बोते हैं और गेहूं काटते हैं।' घाटी भर में किसका मक्का सबसे बढ़िया होता है? उसी का! किसकी काम करनेवाली टोली सबसे अच्छी है? उसी की! और सभाओं में कौन सबके सामने नज़ीर के तौर पर पेश किया जाता है? वही! एक दिन सारा देश उसके बारे में सुनेगा। उस जैसे लोगों की हर जगह इज़्ज़त और ख़ातिर होती है। उससे शादी करके तुम कोई ग़लती नहीं करोगी–और समय आने पर तुम हमारा शुक्रिया अदा करोगी।"

"मैं जानती हूं कि तुमने मुझे हमेशा बड़ी मुहब्बत से पाला-पोसा है। मगर अभी... मगर अभी..." नसीबा ने अपनी मां को बांहों में भर लिया, पर वहां जैसे इसका कोई असर ही नहीं था: शमाई जैसे बुत बन गई थी। "प्यारी अम्मी, मेरी इतनी तमन्ना है पढ़ते रहने की। अभी

मैं छोटी हूं... और मेरे गाने में कोई बुराई नहीं है, कोई नहीं!"

"दूर हो मुझसे," अपनी लड़की को एक ओर हटाते शमाई ग़ुस्से में बोली। "कोई बुराई नहीं, तू कहती है? अच्छा तो बता लोगों के सामने मुंह उघाड़े खड़े होने में अच्छाई ही क्या है? क्या तू दरअसल सोचती है कि जब वे तालियां बजाते हैं, तो तेरी वाहवाही कर रहे होते हैं? वे तो तेरी हंसी उड़ा रहे होते हैं और तेरा मज़ाक बना रहे होते हैं। और तू, बिचारी, ख़ुशी के मारे फूली नहीं समाती... और आख़िर यह गाना-वाना काम किसका है? भिखमंगे गाते हैं, एक टुकड़ा रोटी के लिये। मगर हम, अल्लाह का शुक्र है, भिखमंगे नहीं हैं। हमें अपने ख़ानदान पर नाज़ है... और इसलिये यह आख़िरी फ़ैसला है: अब से गाना-वाना बन्द!"

"मेरी ज़िन्दगी की सारी ख़ुशी इसी में है," नसीबा सुबकती रही। "और, अब्बा जान, आपने मुझे संगीतशाला में भेजने का वादा किया था। क्या आप अपना वादा पूरा नहीं करेंगे?"

"यह सब ऊलजलूल कुछ नहीं चलेगा," शमाई बीच में ही बोल पड़ी। "तुम्हारे अब्बा तो मज़ाक कर रहे थे। वह तो उन्होंने इसलिये कहा था कि तुम अपनी पढ़ाई मन लगा कर करो और हमारे पुरखों और ख़ानदान की इज़्ज़त पर आंच न आये। तुम्हारे अब्बा बख़ूबी जानते हैं कि मैं तुम्हें शहर जा कर रहने की इजाज़त कभी नहीं दूंगी। तुम्हारी ज़रूरत की हर चीज़ यहां मयस्सर है। नौ साल तुम स्कूल भी गईं और इतना काफ़ी है। मैंने तो कभी स्कूल का

मुंह तक नहीं देखा और सुना है तुमने मुझे इसकी शिकायत करते?"

हबीब अपने गुस्से को मुश्किल से रोक पा रहा था। अब उसे इस बात का अफ़सोस हो रहा था कि उसने अपनी बीवी की तरफ़दारी की। हमेशा वह अपनी लड़की के साथ बड़ी मुलायमियत से पेश आता था और अगर उसे इस बात का यक़ीन नहीं होता कि उन्हें अपनी तजवीज़ पर क़ायम रहना ही चाहिये तो वह अपनी बीवी को इतनी कड़ी ज़बान न बोलने देता। अगर वे इस पर क़ायम न रहे, अगर उन्होंने अब भी उसे अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ करने दिया, तो उन्हें अपनी बाक़ी ज़िन्दगी इसके लिये पछताना पड़ेगा, यहां तक कि नसीबा के लिये भी। और बाद में तब 'न' करना और मुश्किल होगा, जब लड़की का नादान दिल कहीं अटक जायेगा... तिस पर ऐसा भी तो नहीं कि वे किसी अजनबी को उसपर थोप रहे हों। उमलात एक अच्छा लड़का है, ईमानदार और हर दिल अज़ीज़। और लड़की का बाप होने के नाते उसकी अपनी हैसियत ही क्या है? इस मामले में अगर वह ग़लती पर भी हो, तो उसे पता है कि उसने हर भले-बुरे पहलू को सात बार तौल लिया है और ख़ूब ग़ौर कर संजीदगी से चुनाव किया है। सांड़ की तरह दरवाज़े से नहीं भिड़ गया।

"आओ, बिटिया, अपना नाश्ता करो", हबीब ने पुचकारते हुए कहा। "बात मानो मेरी, तुम अपनी नई ज़िन्दगी की एकदम आदी हो जाओगी।"

"आदी-वादी कुछ नहीं," बुढ़िया बीच में ही टपक पड़ी। "तुम्हें शादी करनी है और यह सब वाहियात भूल

जाओ। बस। तुम्हारे बच्चे होंगे और उन्हें तुम पालो-पोसोगी – यही वह सुख है, जो तुम्हें हासिल होगा ... समय रहते लड़की को ब्याह देना मुसलमानों का पाक फ़र्ज़ है। और जो अपना फ़र्ज़ पूरा नहीं करेंगे उनपर अल्लाह का क़हर टूटेगा।" कमरे के कोने में जुताई के औज़ार टटोलते अपने शौहर की ओर मुड़कर वह बोली, "तुम क्यों वक़्त बरबाद कर रहे हो? मैंने तुम्हारी रोटी पर उर्बेश लगा दिया है। अपना नाश्ता करो! .. और तू लौंडिया, तेरे लिये हमसे जो अच्छे से अच्छा हो सकता है, कर रहे हैं। क्या तू हमारी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ जायेगी?"

नसीबा ने कोई जवाब नहीं दिया। वह कहती भी क्या? क्या करे वह अब – अपने मां-बाप, घर और गांव से दूर भाग जाये?

"अब से पढ़ाई-लिखाई बन्द – समझी? तुम्हें अपनी शादी की तैयारी करनी होगी। अब और कुछ कहने-सुनने की ज़रूरत नहीं।"

"मां!" नसीबा अपनी बात कहना चाहती थी, बहस करना चाहती थी, यह कहना चाहती थी कि अगर उन्होंने उसकी यह शादी जबरन करानी चाही, तो वह भाग जायेगी। पर तब तक उसका बाप, जिसके रहते उसे और हौसला मिलता, अपनी बांह पर काठी धरे और चेरी की लकड़ी का एक पुराना पाइप मुंह में दबाये, बिना नाश्ता किये ही चल दिया था। और उसकी मां उसकी ओर ऐसी क्रोध भरी नज़रों से देख रही थी जिनका मतलब था: "ज़बान बन्द। अब से जो मैं कहूं वही तुम्हें करना है।"

और इस तरह नसीबा ने हथियार डाल दिये। वह अपने कमरे में जाकर सिसक-सिसक कर दिल का गुबार निकालते

हुए पीले बस्ते और अपनी स्कूल की किताबों के पास तख़्त पर पड़ रही।

गांव का चौक ही उर्कुख़ में इकट्ठे होने, मिलने-जुलने और जलसे वग़ैरह मनाने की मनपसन्द जगह है। यहीं पर वे शादी-ब्याह रचाते हैं और राष्ट्रीय तथा जातीय त्यौहार मनाते हैं। हर हफ़्ते बाज़ार भी यहीं लगता है और हर जुमेरात को चौक आसपास के आऊलों से पैदल या घोड़ों पर आये ख़रीद-फ़रोख़्त करने के लिये आने वालों से भर जाता है। और क्या नहीं मिलता यहां! – कुबाची के चांदी के गहने बनाने वालों का दस्तकारी का सामान, दरबेन्त के कालीन, कैताग और त्सुदाखार के मेवे, सिराघिन की घाटियों का मक्खन, क्रीम, पनीर और दही, कतग्नी की लकड़ी की चम्मचें और कड़छुलें, सुलेवकन्द के मर्त्तबान और तश्तरियां। एक ओर को एक ओसारा है, जहां भेड़ें काटी जाती हैं, पर अगर आप मुर्दा बोझ ढोने के बजाय ऐसा गोश्त चाहते हैं जो "खुरों पर हो" – तो आपको वहां उस दीवाल के पास वाली भेड़ों, मेमनों और बकरियों की मेंगनियों से गन्दी जगह तक जाना पड़ेगा। अपना सिर नीचा किये, मानो ख़रीदार से शर्म या भय खाते हुए, बाड़े में बन्द मवेशी एक दूसरे को धकेल रहे होते हैं। यहां आप घोड़ा तक ख़रीद सकते हैं – और घोड़ा ही क्या, चमचमाता नया मोपैड* भी, आपको आकर्षित करने के लिये जिसे

---

*पैडलदार स्कूटर – जिसे पैडल से भी और पेट्रोल के ज़ोर से भी चलाया जा सकता है। – सं०

ज़ुल्फ़िकार ने अपनी दूकान के सामने उसके स्टैंड पर खड़ा कर रखा था।

पर आम तौर से यह चौक ऐसी जगह है जहां लोग मिलते-जुलते हैं, गपशप करते हैं, बोआई, फ़सल या कटाई के बारे में बातचीत करते हैं, दुनिया में होनेवाली घटनाओं के बारे में अपने विचार प्रकट करते हैं, इस बात की चर्चा करते हैं कि खेत की टोलियां और गड़रिये योजना को पूरा करने में कैसी प्रगति कर रहे हैं।

आज बड़े सबेरे से ही चौक पर गाना-बजाना हो रहा है। पारी-पारी से ज़ुर्ना (एक तरह की शहनाई–अनु०) बजाने वालों के गाल धौंकनी की तरह फूल और चिपक रहे हैं। ढोल लगातार धमाधम बजे ही जा रहा है, मगर ढोल बजाने वाले, भले ही वे पारी-पारी से बजा रहे हैं, कुछ न कुछ तो थक ही गये लगते हैं, वे अपने मुंह पर का पसीना या तो अपनी बांहों से पोंछ रहे हैं या उस रंगीन कमरबन्द से जो, रस्म के मुताबिक़, उन्हें दूल्हे ने नज़र किया है जिसके वास्ते यह सब हो रहा है। दूर के पहाड़ों से उस प्रसिद्ध लेज़गीन्का नृत्य की चापों की प्रतिध्वनि आ रही है, जो इसी पहाड़ी प्रदेश दाग़िस्तान से पैदा होकर और-और जगह भी फैल गया है।

यूं पहाड़ी लोगों के शादी-ब्याह अमूमन पतझड़ में ही होते हैं, क्योंकि इन्हीं दिनों दुर्शी की हवाओं की जादू की छड़ी खेतों, जंगलों, फलों के बाग़ों और पहाड़ों को वैवाहिक सजधज प्रदान करती है, इन्हीं दिनों काम करने वालों को अपनी धरती और मेहनत का फल उपहारस्वरूप मिलता है; इन्हीं दिनों नई शराब गिलासों में ढाली जाती है और मक्की के आटे की चपटी बख़ारन रोटियां गर्म राख की आंच में सिंक

कर भूरी हो रही होती हैं। पर सामूहिक फ़ार्म के गड़रिये सुर्ख़ाई ने इस रिवाज से अलग ही, बसन्त में अपनी शादी रचाई, ताकि उसे काली माटी के जाड़े के चरागाहों में जाने से पहले अपनी बीवी ज़ैनब के साथ अधिक दिन रहने का मौक़ा मिल सके।

सुर्ख़ाई के मेहमानों में सारा सामूहिक फ़ार्म ही नहीं, अपितु दूसरे गांवों के लोग भी शामिल हैं। बुज़ुर्ग लोग हम लोगों के ज़माने की शादी की दावतों पर अचरज करते हैं और बताते हैं कि उनके ज़माने में तो रईस से रईस ख़ानदान भी इतने ठाठ की दावत नहीं कर सकता था।

चौक के बीच के हिस्से पर, जो नर्तकों और भांड़ों के लिये है, क़ालीन बिछे हैं। इसके चारों ओर एक बड़ा घेरा सम्मान्य अतिथियों के लिये है, कुछ तो मेज़ के साथ लगी कुर्सियों पर बैठे हैं और कुछ पुरानी परिपाटी के अनुसार गद्दों पर ही बैठे हैं। उनके पीछे एक ओर गांव के जिघितों (जवानों) की टोली है, जिन्हें लड़कियां उनके तिरछे पपाख़ाओं के कारण 'बांके' कहा करती हैं। सामने दूसरी ओर इन छैलों की ओर चोरी-चोरी देखती लड़कियां – जिन्हें लड़के 'चोरी-छिपे मुस्कुराने वाली' ठीक ही कहते हैं – नृत्य के आमन्त्रण की प्रतीक्षा में खड़ी हैं और अपने खिलखिला कर बाहर आते आह्लाद को छिपाने के जतन कर रही हैं।

अब उन जिघितों में से एक उछल कर छलांग मारता बैठे हुए मेहमानों के सामने आता है। वह सरकाशियाई राष्ट्रीय वेशभूषा में है; सिर पर है सफ़ेद कन्टोप-सा बाश्लिक जो उसके कन्धों तक लटका है, और पैरों में हैं मोज़े की तरह कसे मुलायम चमड़े के जूते। इन दिनों आपको राष्ट्रीय

वेशभूषा पहने लड़के कम ही दिखाई देंगे, जब कि शहरी सूट और कोट डाटे ज़्यादा से ज़्यादा दिखाई देंगे। बात अफ़सोस की है, मगर है ऐसा ही।

इस ख़ूबसूरत मर्दाने जवान के ऊपरी होंठ पर बारीक़ी से कटी मूंछें हैं, जिसे लड़कियां जोंकों का जोड़ा कहा करती हैं। एक हाथ कन्धे तक उठा कर फैलाते हुए और भूरे कराकुल की पपाख़ा से ढंके सिर को पीछे झुकाये उसकी मुद्रा बड़ी गर्वीली लगती है; परम्परागत ढंग से "ख़ैत्!" कहते हुए वह बीच वाली जगह पर धीरे-धीरे बड़ी अदा के साथ चक्कर लगाता है। अपने क़दमों की चाल तेज़ करते हुए वह अपनी उकाब की सी नज़रें कभी अपने जूतों के पंजे की ओर तो कभी क्लब की इमारत की छत के पार कहीं ऊपर की ओर ले जाता है।

"ख़ैत्! .. ख़ैत्!"

संगीत की ताल से ताल मिला कर जवानों ने भी ताली देना शुरू कर दिया है। नाचते पगों, ताली देते हाथों, आवाज़ों और संगीत की लय ने मिलकर ऐसा समां बांध दिया है कि लय की बाढ़ में बाजे बजाने वाले बह गये हैं और उनके चेहरों से थकान के चिह्न मिट गये हैं। ऐसा लगता है कि अब किसी भी क्षण वे कूद पड़ेंगे और नाच में शामिल हो जायेंगे।

"ख़ैत्! ख़ैत्, उमलात! ख़ैत्!"

आवाज़ और ताली के कोरस से जोश में भरकर इस तरुण उक़ाब उमलात की उड़ान तेज़ होती जाती है। ढोल की थाप और तेज़ होती जाती है और अब ऐसा लग रहा है जैसे नर्त्तक कुछ और लम्बा हो गया है, या शायद वह

सचमुच क़ालीन से कुछ ऊपर उड़ रहा है। उमलात को अपने पंजों के बल तेज़ी से एक बड़ा-सा चक्कर लगाते देख दर्शक ख़ूब ज़ोर-शोर से उसकी प्रशंसा करते हैं।

सामूहिक फ़ार्म के अध्यक्ष उस्मान चाचा की उपस्थिति के बिना, जिनकी ख्याति हमारे पहाड़ी प्रदेश में दूर-दूर तक फैली हुई है, इस तरह का कोई उत्सव पूर्ण नहीं माना जाता। और वह केवल बम्मातोव खानदान के उस्मान के नाते ही नहीं, बोल्शेविक उस्मान के नाम से भी मशहूर हैं – बल्कि ज़्यादा मशहूर हैं। इस नाम की भी एक कहानी है। गृहयुद्ध में जो लोग लाल पार्टीज़ान (छापामार) थे, वे उन्हें अपने दिलेर नेता के रूप में याद करते हैं, और पीले पड़ रहे पुराने सरकारी काग़ज़ातों के पन्ने पलटने वाले इतिहासकार बोल्शेविक उस्मान के नेतृत्व में लड़ने वाली टुकड़ी के लड़ाई के मार्ग की खोज-बीन करते हैं। यह गर्वीला नाम किसी योद्धा की छाती पर लटक रहे उस तमग़े की तरह है, जो उसे युद्धक्षेत्र में किये गये किसी बहादुरी के कारनामे पर मिलता है।

१६१६ में, जब उस्मान १६ साल का लड़का था, यूज़बेक नाम के आदमी की अगुआई में लुटेरों के एक दल ने हाल में खाई मातों का बदला लेने के लिये उर्कुख़ आऊल पर धावा मारा। उनका एक बन्दी उस्मान भी था। यूज़बेक ने उसे इसी चौक में बुलवाया और उसी जगह खड़ा करने का हुक्म दिया, जहां इस समय उमलात नाच रहा है।

"बोलो! क्या नाम है तुम्हारा? और सच-सच बोलना," नशे में धुत्त लुटेरा गरजा।

"मैं उस्मान हूं, बम्मातोव खानदान का," लड़के ने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया।

"मुझे तुम्हारे पुरखों से कोई वास्ता नहीं। तुम कौन हो? तुम्हारे ख़यालात क्या हैं?"

"बोल्शेविक!"

"नीच!" लुटेरा गुर्राया, मारे ग़ुस्से के उसकी फूली-फूली आंखों से पानी बह रहा था। उसने झटके के साथ चमड़े के केस में से पिस्तौल निकाली और उसे उस्मान के मुंह की तरफ़ लाकर बोला, "अफ़सोस कि मैं तुम्हें एक ही बार मार सकता हूं।"

"मुझे सात बार मार डालो और सात बार ज़िन्दा करो, पर मैं तब भी बोल्शेविक ही रहूंगा। मैं बोल्शेविक इसलिये हूं कि सचाई बोल्शेविकों की ओर है। तुम्हारे दिन लद गये हैं, तुम्हारा नग़मा गाया जा चुका है। चलाओ गोली, यूज़बेक, और मेरे दिल का निशाना लगाओ।"

ग़ुस्से से कांपता यूज़बेक तीन क़दम पीछे हटा, लड़के के पेट का निशाना लेकर उसने घोड़ा दबा दिया। पिस्तौल फ़ुस्स करके रह गई। फिर उसने घोड़ा दबाया—फिर फ़ुस्स। तीसरी बार भी फ़ुस्स।

"देखा तुमने, यूज़बेक, तुम्हारी पिस्तौल एक बोल्शेविक को मारने से इनकार करती है," उस्मान मुस्कुराते हुए बोला। "पर यही हथियार मुझे दो और मैं तुम्हें दिखा दूंगा कि यह एक कायर के साथ कैसा सलूक करती है।"

आवेश और मदिरा से धुंधलाया यूज़बेक का दिमाग़ "कायर" शब्द पर कड़क कर चौंक उठा। किसी ने उसे ऐसा कहने की जुरअत नहीं की थी। वह डाकू था, लापरवाह

जुआरी था, जो किसी ख़तरे से नहीं डरता था, वह कायर नहीं था। अपने पैरों के बल झूमते उसने अपने चारों ओर देखा और भांप गया कि बहुतेरे देखने वाले अपनी हंसी छिपाने की कोशिश कर रहे हैं। उसने पिस्तौल उस्मान को दे दी और तीन क़दम पीछे हटकर अपनी तलवार खींच ली।

"चलाओ गोली! अगर नहीं चली, तो मैं तुम्हें काट डालूंगा!"

"बोल्शेविक उस्मान से ऐसा न होगा कि गोली न दग़े," लड़के ने जवाब दिया और पिस्तौल ऊपर की।

यद्यपि चौक में सभी आदमी सांस रोके खड़े थे, उन्होंने गोली के छूटने की दबी-दबी आवाज़ नहीं सुनी पर यूज़बेक को धीरे-धीरे और अनिच्छापूर्वक घुटनों पर दुहरे होते देखा। कुछ क्षणों तक वह इसी स्थिति में झुके-झुके रहा मानो कोई धर्मपरायण मुसलमान अपनी मृत्युशैय्या पर यासीन पढ़ रहा हो। फिर वह आगे को ढेर होकर एक करवट पड़ रहा।

"तुम जीते... बोल्शेविक उस्मान..."

दाग़िस्तान में सोवियत सत्ता के आख़िरी दुश्मन के ये आख़िरी शब्द थे और उस्मान को बोल्शेविक उस्मान कहा जाने लगा।

इस घटना को अपनी आंखों से देखने वालों में से एक — दश्तेमीर, उर्कुख़ सोवियत के लगातार चुने जानेवाले सेक्रेटरी — इस समय सम्मान्य मेहमानों में बैठे किसी बात को याद करके बड़े ज़ोर से हंस रहे थे।

"तक़दीर ने हमेशा तुम्हारा साथ दिया है, उस्मान चाचा," वह कह रहे थे।

"नहीं," उस्मान ने विरोध किया। "मेरा नहीं बल्कि

सोवियत सत्ता का... और वह तुम्हारा वास्तुकार लड़का नये क्लब का नक़्शा वग़ैरह लेकर कब आ रहा है?"

"अब किसी भी दिन, उस्मान मियां," सेक्रेटरी ने जवाब दिया। फिर, इस डर से कि कहीं जश्न में ख़लल डालने के कारण जश्न का कर्त्ता-धर्त्ता तमादा और पीने के लिये मजबूर न करे, वह ताली बजाकर "ख़ैत्!" कहने वालों में शामिल हो गये।

इसी समय वहां ज़मुर्रद आई, जिसे कुछ ही दिन पहले गांव के कम्युनिस्टों ने अपना आदर और विश्वास दरसाते हुए सामूहिक फ़ार्म के पार्टी ब्यूरो में चुन लिया था। यूं यह रिवाज अब भी ख़ूब प्रचलित था कि इस तरह के समारोहों में औरतों को मर्दों के साथ नहीं बैठना चाहिये, पर अध्यापिका ज़मुर्रद ने हमेशा इसकी उपेक्षा की थी और जहां तक उसकी बात थी, सभी मानते थे कि यह ऐसा ही होना चाहिये। पर अगर कहीं कोई और स्त्री ऐसा करने की जुरअत कर बैठे, तो साक्ल्यों में कैसी ज़बानें चलेंगी, कैसा शोर मचेगा और पीठ पीछे निंदा की जायेगी! जी हां, शुरूआत ऐसे ही होती है, पहली बार तो यह बात एक तूफ़ान खड़ा कर देगी, दूसरी बार भी, और शायद तीसरी बार भी, पर फिर तूफ़ान ख़ुद-ब-ख़ुद ख़त्म हो जायेगा। वे इस तरह की बातों के आदी हो जायेंगे, यहां तक कि अगर वैसा न हो, तो उन्हें अचरज होगा। ज़मुर्रद को भी अपने ज़माने में इन तूफ़ानों से गुज़रना पड़ा था, पर उसने दिखा दिया कि धीरज और शान्ति के सामने सब ठंडा पड़ जाता है।

लड़ाई में अपने शौहर के इन्तकाल के बाद से वह अपना सारा ध्यान अपने इकलौते बेटे, हिज़री, के पालने-पोसने

ग्रौर ग्राऊल के लड़के-लड़कियों को तालीम देने में लगा दिया था।

तमादा ख़ुद ज़मुर्रद के लिये सबसे ग्रच्छी शराब का गिलास ले कर ग्राया। उर्कुख़ में होने वाले हर इस तरह के जश्न में एक ही ग्रादमी तमादा हुग्रा करता है – ज़ुल्फ़िकार, किस-तमान का बाप ग्रौर गांव की दूकान का मैनेजर, जो लोगों की वाहवाही के साथ हर बार चुन लिया जाता था। पीपे से गेद्ज़ुख शराब के गिलास भरते हुए उसने लेज़गीनका नाचते उमलात की ग्रोर देखते हुए पास बैठे एक ग्रादमी से कहा :

"बिल्कुल उक़ाब है यह लड़का – नाच में भी, काम में भी।"

मोटे-ताज़े, सुर्ख़ गालों वाले ग्रादमी ने एक गोश्त का ग्रच्छा-ख़ासा टुकड़ा मुंह में डालते हुए पूछा : "नाम क्या है इसका ?"

"उमलात।"

"वही तो नहीं, जिसके मक्का के हर डंठल में से चार-चार भुट्टे निकलते हैं ?"

"वही-वही," ज़ुल्फ़िकार ने ग्रभिमान के साथ कहा। "ग्राजकल के ज़माने का ग्रसली ग्रादमी । उस जैसों से तो हम ग्रौर बहुतेरे काम निकाल सकते हैं। जैसी कि कहावत है, 'वह बोता जौ है पर काटता गेहूं है'।"

नर्त्तक पर से ग्रपनी ग्रांखें हटाये बिना उस मोटे ग्रादमी ने उत्कण्ठा के साथ पूछा : "ग्रौर उसकी शादी में भी तुम्हीं तमादा थे ?"

"होऊंगा, मुझे उम्मीद है," अपने मुंह में एक कुर्ज़ रखते हुए ज़ुल्फ़िकार बोला—और कुर्ज़ गोश्त का कोई छोटा-मोटा समोसा नहीं होता, एकदम से मुंह भर जाता है।

"क्या उसके मां-बाप को मैं जानता हूं?"

"ज़रूर जानते हो। वह चरवाहे हसन का बेटा है।"

"ज़रा सोचो तो! लड़ाई के ज़माने के मेरे पुराने दोस्त हसन का बेटा! ख़ूब! ख़ूब!"

अब एक लड़की कालीन बिछे चौक पर हौले-हौले नाच रही थी और मोटे आदमी ने ज़रा चिन्तित स्वर में पूछा: "मगर मेरी बेटी सकीनत कहां है? लगता है वह दूसरी लड़कियों के साथ वहां भी नहीं है... मेरा गिलास तो भरना ज़ुल्फ़िकार।"

मोटे आदमी, मुस्ताफ़ा ने, जो पड़ोस के ही सामूहिक फ़ार्म का अध्यक्ष था, अपना गिलास ख़ाली करते हुए ज़ुल्फ़िकार से पूछा कि आसपास कहीं हसन भी होगा।

"उम्मीद तो हम कर रहे थे पर ज़रूर किसी वजह से उसे रुक जाना पड़ा होगा। ज़्यादा से ज़्यादा कल सुबह तक उसे वापस आ जाना चाहिये।"

"अच्छा, कल ही सही... कैसा अच्छा सजीला जवान!" बवंडर की तरह गोलाई में तेज़ी से चक्कर लगाते उमलात की ओर प्रशंसाभरी नज़रों से मुस्ताफ़ा ने देखा। "हां, मेरे दोस्त हसन को बहुत अच्छा लड़का मिला है... पर मेरी सकीनत कहां है?.. तुम्हारा क्या ख़्याल है, ज़ुल्फ़िकार— क्या हम लोग कल कुछ बातचीत चलाने का मौक़ा पा सकेंगे?"

"किस बारे में?"

"क्या मतलब 'किस बारे में'? पिछले घण्टे भर से मैं क्या बतिया रहा हूं?"

"तुम कह रहे थे कि हसन का लड़का कितना अच्छा है, और यह ऐसी बात है जिसे हम सभी जानते हैं।" ज़ुल्फ़िकार मन ही मन मुस्कुराया।

"दामाद वह अच्छा साबित होगा।"

"ओह, तो यह माजरा है!" अपनी मूंछें ऐंठते ज़ुल्फ़िकार ने बड़ी मासूमियत के साथ अपने पड़ोसी की ओर देखा।

"अच्छा तो फिर कल हम लोग यह बात चलायेंगे?"

"क्यों नहीं?"

अचानक ही संगीत और हंसी ऐसे रुक गये जैसे किसी चाकू से काट दिया गया हो। दुलहन की सवारी दिखाई देने लगी थी और चौक का हर आदमी उसी ओर तेज़ी से बढ़ा जा रहा था। यहां तक कि भगदौड़ में अपने रंगबिरंगे कमरबन्दों को बांधते बाजे वाले भी शामिल हो गये।

पहाड़ के क्षितिज पर उगी कांटेदार झाड़ियों और वृक्षों से उलझने के लिये सूर्य ने यह अवसर उपयुक्त समझा और किसी ऐसी चीज़ को पकड़ने की कोशिश में, जिससे वह ऊंचाई के दूसरी ओर नीचे न चला जाय और इस जश्न के अन्तिम अंश से वंचित रह जाय, उसका मुंह रक्ताभ हो गया। पर आख़िरकार उसकी पकड़ छूट गई और वह आंखों से ओझल हो गया।

गोधूलि वेला आ गई।

दुलहन की लॉरी के आगे-आगे गधे पर सवार भांड़ चला आ रहा था। उसके कन्धों पर एक पुराना बोरा पड़ा था,

जिसके छेदों में से कड़छुल, डब्बे, चम्मचें और हर तरह के घरेलू बर्त्तन बाहर निकले हुए थे।

"यह बोरा आप क्यों उठाये हुए हैं, जनाब आली?" मज़ाक़ भरे जवाब की उम्मीद में हंसते हुए दश्तेमीर ने पूछा।

"गधे का बोझ हलका करने के लिये।"

"और आपके गधे ने आज हजामत क्यों नहीं बनाई? उसे पता नहीं क्या कि हमारे सामूहिक फ़ार्म में हज्जाम भी है?"

"आजकल उसने हजामत बनवानी छोड़ दी है।"

"क्यों भला?"

"वह मुअज़्ज़िन मुख़्तार की जगह बुर्ज़ पर काम करने वाला है। मुख़्तार एक बड़ा भारी गुनाह कर बैठा है–एक दावत में वह सूअर की चरबी का एक टुकड़ा पनीर समझकर खा गया। इसलिये मेरा गधा अब अजान देकर दीनदार लोगों को नमाज़ के लिये बुलायेगा–ही-ही हा-हा! और बिना दाढ़ी का मुअज़्ज़िन तो कभी सुना नहीं होगा आपने, कि सुना है?"

या तो गधे को अपने बारे में मज़ाक पसन्द नहीं आया या फिर बुर्ज़ वाले काम के मिलने की संभावना से ही ग़ुस्सा आ गया, जो भी बात रही हो पर वह बीच रास्ते में अड़ गया, पूरी ताक़त से रेंकने लगा, और अचानक दुलत्ती लगा कर ऐसा उछला कि भांड़ महोदय आकाश में उड़ते नज़र आये।

बड़े ज़ोर की हंसी के बीच भांड़ ने उठकर अपने घुटने सहलाये और फिर, बिना किसी प्रत्यक्ष कारण के, पास खड़े एक लड़के पर अपना बोरा लिये-लिये बड़े ज़ोर से उछल कर जा गिरा।

"खीसें किस पर निपोर रहे हो?" उसने गुस्से में पूछा। "मैं तो वैसे भी उतर ही रहा था।"

सवारी के साथ-साथ लकड़ी की तश्तरियों में मिठाइयां लिये लड़के "शहद! शहद! शादी का शहद! शहद से अपने होंठ मीठे कर लो!" ज़ोर-ज़ोर से कहते चल रहे थे। हर एक ने शहद और मेवों से बनी शादी की पारम्परिक मिठाई का एक एक टुकड़ा लेते हुए दुआ की: "इनका वैवाहिक जीवन शहद-सा मधुर हो!"

बेशक, प्राचीन कथाओं में आने वाले भांड़ नसरुद्दीन की ख्याति मुस्लिम जगत में दूर दूर तक फैली हुई है और हम लोगों के यहां तो ऐसी कहावत भी है कि "नसरुद्दीन के सिवाय दूसरा नसरुद्दीन नहीं।" इसके बावजूद, हर आऊल का अपना नसरुद्दीन होता ही है और हमारे उर्कुख़ में है हिज़री – "हमारा एक्टर।" अब, अपने गधे के पास खड़ा और मुंह में मेवे वाली शहद की मिठाइयां भरे वह चिल्ला रहा था:

"ज़ैनब! सुर्खाई! तुम्हारा घर इस मिठास से सदा भरा-पूरा रहे। और – भले इसके वास्ते ही सही – मैं हमेशा तुम्हारे यहां आया-जाया करूंगा।"

"मगर इतना मत भकोसो," एक तश्तरी उठाने वाले ने चिन्तित-सा होकर कहा, "यह तुम्हारे दिल को नुकसान पहुंचायेगी।"

"अपने आंसू सहेज कर रखे रहो, बेटे," हिज़री ने कहा। "और फिर, यह दिल है किसका – तुम्हारा या मेरा? अपनी सारी ज़िन्दगी मैंने इसके साथ गुज़ार दी है

ग्रौर मैं जानता हूं कि इसके लिये क्या बुरा है ग्रौर क्या भला।"

इन ग्रावाज़ों के बीच कि "रास्ता दो! रास्ता दो! हमें जल्दी पड़ी है!" सवारी फिर धीरे-धीरे बढ़ने लगी, ग्रब भी भांड़ ग्रपने गधे पर ग्रागे-ग्रागे था। दुल्हन ग्रपनी ही उम्र की लड़कियों ग्रौर कुछ उनसे ज़्यादा उम्र की उन ग्रौरतों से घिरी थी, जो ज़ैनब को याद दिला रही थीं कि इस मौक़े पर दुल्हन को रोना चाहिये। पर यह सलाह ग्रकारथ गई। ज़ैनब ख़ुश थी—लवा-सी ख़ुश। ग्रब वह रोती तो क्या, हां, उड़ भले सकती थी। वह सकीनत के लगातार मज़ाक़ों पर हंस रही थी, ग्रौर सकीनत ख़ुद दुल्हन से कम ख़ुश नहीं थी। एक नसीबा ही उदास थी, मगर वह भी ज़ैनब के प्रति ग्रपनी वफ़ादारी दिखाने के लिये ग्रपने चेहरे पर मुस्कान बनाये हुए थी।

ग्रन्त में वे दूल्हे के नये साक्ल्या पर पहुंच ही गये। एक पुराने पहाड़ी रिवाज के मुताबिक़—ग्रौर यह रिवाज भी ख़ूब है!—जब कभी ग्राप नये बन रहे साक्ल्य के पास से गुज़रें, एक पत्थर साथ लेते जायें ग्रौर उसे उस घर की दीवार में शामिल कर दें। इसी तरह नवविवाहितों के साक्ल्या बना करते हैं—ग्रपने दोस्तों द्वारा लाये गये पत्थरों से। यह कहावत भी कितनी सच्ची है कि दोस्ती की बनी दीवारों से मज़बूत कोई दीवार नहीं होती!..

ग्रौर ग्रब सुर्खाई ग्रपने नये घर के सामने ग्रपनी दुल्हन का इस्तक़बाल करने के लिये सीढ़ियां उतर रहा है। उर्कुख़ के बढ़िया ग्रौर गाढ़े नीले ऊनी कपड़े के बने सूट में, बर्फ़-सी

सफ़ेद कमीज़ और काली टाई में वह ख़ूब जंच रहा है। उसका मुंह एक ऐसी ख़ुशी से दमक रहा है जिसे वह छिपा नहीं पा रहा और वह इस कोशिश में है कि हर आदमी की बात, मुस्कुराहट और मज़ाक का समुचित उत्तर दे। निचली सीढ़ी से लेकर, जहां वह खड़ा है, समतल ज़मीन पर कालीन की एक पट्टी बिछी है। दुल्हन को लाने वाली लॉरी बड़ी सफ़ाई से पीछे की ओर जाकर उसके दूसरे सिरे तक पहुंचती है। इसमें कोई चूक नहीं होनी चाहिये—लॉरी से उतर कर दुल्हन का क़दम सीधे कालीन पर ही पड़ना चाहिये!

डाकिया रशीद—जिसके पैर कभी टिके नहीं रहते—सुर्ख़ाई की पीठ थपथपाता है और कहता है:

"अच्छा, बिरादर, अब तुम भटको और डबो—समुन्दर में बारिश की एक बूंद की तरह भटको और डूबो।"

"थोड़ा इन्तज़ार और, रशीद," दूल्हा हंसता है। "ऐसे ही किसी दिन तुम भी प्यार के समुन्दर में डूबने-उतराने लगोगे।"

अब ज़ैनब अपनी रेशमी किमख़ाब की पोशाक में नीचे उतरती है और अपने झीने घूंघट के भीतर से सुर्ख़ाई को देखकर मुस्कुराती है। हाथ के इशारे से वह उसे उसके नये घर में आमन्त्रित करता है।

"पर यह तुम्हारी ज़ैनब जो है, सचमुच है ख़ूबसूरत!" रशीद अचरज में भरकर कह उठता है। "मुझे तो बिल्कुल अभी-अभी इसका भान हुआ।"

"गोया तुम भी उससे इश्क़ कर सकते थे, है न?" सुर्ख़ाई ने पूछा।

"ऊं-हुं। बहुत पहले मैं क़सम खा चुका हूं कि सिर्फ़ उसी वक़्त औरतें मेरा बदन छू पायेंगी जब वे मेरी देह को दफ़नाने के लिये तैयार कर रही हों।"

यह सुनते ही दुल्हन के साथ चल रही औरतों की ओर से अफ़सोस और हंसी की एक मिली-जुली आवाज़ आती है। उनमें से एक कहती है:

"बेचारा रशीद। और सोचो तो कि यह तुम्हीं हो, जो हर रोज़ ये इतने सारे प्रेमपत्र आऊल में बांटा करते हो!"

"बस!" बनावटी गंभीरता के साथ हिज़री की आवाज़ गूंज जाती है। "सुर्ख़ाई – तुम्हारी दुल्हन तुम्हारा इन्तज़ार कर रही है!"

कोलाहल, हंसी-मज़ाक और दोस्तों की शुभकामनाओं के बीच सुर्ख़ाई – जो अब अचानक ही शर्मीला हो गया था – दरवाज़े से भीतर जाकर विवाहित युगल के लिये विशेष रूप से तैयार किये गये उस कमरे में घुसता है, जहां, रिवाज़ के मुताबिक़, दुल्हन बीच फ़र्श पर इन्तज़ार करती खड़ी रहती है। कालीन पर एक गद्दा बिछा कर वह दुल्हन को बैठने के लिये कहता है।

जो कहीं यह शादी वसन्त के बजाय पतझड़ में हुई होती, तो मेहमानों ने दूल्हा-दुल्हन को इतनी जल्दी न छोड़ दिया होता। वसन्त में बहुत से ज़रूरी काम होते हैं और यहां तक कि शादी के जश्न भी अनावश्यक रूप से लम्बे नहीं खींचे जा सकते।

धीरे-धीरे घर के बाहर की भीड़ छंट जाती है। सब शान्त हो जाता है। और तब आता है चिर प्रतीक्षित रात का सन्नाटा...

सुबह के सूरज के जादू में पर्वत-शिखर ऐसे लगते हैं, जैसे कुबाची के किसी शिल्पी ने उन्हें चांदी के काम पर सुनहला पानी चढ़ाने के लिये अपने आभूषण तैयार करने वाले कटोरे में से अभी-अभी निकाला हो। घाटियों को भरती, उनींदे वृक्षों के पत्तों को हिलाती-डुलाती और झपकी लेती घास को झकझोरती गर्मी की लहरें ढलान की ओर बढ़ती चली आती हैं। ज़मीन छूने के पहले गिरती हुई ओस की बूंदें सूरज की तिरछी किरणों के प्रकाश में जवाहरातों की फुहार बन जाती हैं। अपने दिन भर के संगीत-सम्मेलन की तैयारी में लवाएं भी बड़ी तन्मय होकर आलाप ले रही हैं। भोर की बयार ऊपर के प्रदेश के फूलों और हलकी ढलान में उगी उन घासों की ठंडी और ताज़ी ख़ुशबू लिये हुए है, जिनमें वे फूल बहुतायत से खिलते हैं जिन्हें हम लोग पहाड़ी गुलाब कहा करते हैं।

उमलात घोड़े पर अपनी टोली के मक्का के खेतों के चक्कर लगा रहा है। सिंचाई और निराई के बाद हर पौधा गर्व से तना खड़ा है और उसके चारों ओर फलियों की एक बेल प्यार से लिपटी है। इन ऊपरी प्रदेशों के खेतों में मक्का और फलियां अभिन्न मित्र होते हैं; वे साथ-साथ उगते हैं, एक दूसरे की बांहों में बंधे हुए।

रह-रह कर उमलात अपनी ऊंची काठी से झुक-झुक पड़ता है, मानो सरसराती पत्तियों की बात सुनने के लिये। थोड़ी-थोड़ी देर बाद मक्का के किसी कड़े पत्ते को छूने या कोई ढेला भुरभुराने के लिये वह उतरता है। अब वह मुस्कुरा रहा है। खेत से कस कर काम लेनेवाला उसका मालिक ख़ुशी झलक जाने देता है! अपने चितकबरे-भूरे घोड़े पर

फिर से चढ़ते हुए वह धीमी सरपट चाल से खेतों के बीच से जाने वाले संकरे रास्ते से उस ओर जाता है, जहां उसकी टोली के लोग मक्का की सिंचाई कर रहे हैं।

बड़ी सड़क की भूरी पट्टी पर, जिसके अग़ल-बग़ल भंग और मक्का उगा हुआ है, अच्छे कपड़े पहने एक आदमी बड़े इत्मीनान से क़दम रखता चला जा रहा है। उसके चेहरे की मुस्कुराहट देख कर ही अन्दाज़ लग जायेगा कि भंग के खेत की तीव्र गन्ध भी उसे अच्छी लग रही है। यह कासिम है, सेक्रेटरी दश्तेमीर का दूसरा लड़का और वास्तुकार ज़हूर का छोटा भाई, और वह अपने गांव उर्कुख़ लौट रहा है।

साल भर पहले दश्तेमीर ने कासिम को कुछ रुपये और एक मशवरा दिया: "यह स्कूल की पढ़ाई तो तुम ख़त्म कर चुके, अब शहर जाओ और आगे की पढ़ाई शुरू करो। अपना विषय तुम ख़ुद चुनो।" उसका मन तो था कि उसका छोटा लड़का अगर ज़हूर की तरह वास्तुकार न भी बने, तो कम से कम भूवैज्ञानिक तो बने ही। भूवैज्ञानिक के हथौड़े से पत्थरों के नमूने इकट्ठे करते और प्रकृति के गुप्त ख़ज़ानों की खोज करते इन पहाड़ों के चक्कर लगाना कोई बुरा काम तो है नहीं, कि है?

मगर कासिम को ख़ज़ानों की खोज या दूसरों के लिये मकान बनाने में कोई रुचि नहीं थी। न ही वह अपना गांव छोड़ना चाहता था, अपने घर और दोस्तों से बिछुड़ जाने पर तो उसे ऐसा लगेगा जैसे कोई घोड़े का बच्चा अपने गोल से भटक गया हो। फिर भी, अपने पिता से कोई बहस किये बिना ही वह शहर की तरफ़ चल दिया। वहां उसने देखा कि

भूविज्ञान संस्थान में प्रवेश चाहने वाले हर तीन विद्यार्थियों में से संस्थान एक ही को ले पा रहा है। कासिम ने मन ही मन सोचा कि जहां इस तरह का मुक़ाबला हो, वहां ऐसे लोगों के अवसर में बाधा पहुंचाने वाला वह कौन होता है, जो दरअसल भूवैज्ञानिक होना चाहते हैं। कोम्सोमोल के अच्छे सदस्य के नाते उसे इन्टरव्यू, इम्तिहान वग़ैरह देकर उच्च योग्यता वाले प्रतिष्ठित लोगों का क़ीमती वक़्त क्यों बर्बाद करना चाहिये, जबकि वह भूवैज्ञानिक होना ही नहीं चाहता? उसने तय किया कि यह एक भूल होगी।

अगर यह भूल थी, तो उसने यह भूल नहीं की।

दूसरी ओर, उस समय और धन के बदले कुछ हासिल किये बिना वह घर वापस जाने की जुरअत भी नहीं कर सकता था। उसके पिता ने अपनी कई बरसों की गाढ़ी कमाई की बचत के रुपये उसे दिये थे ताकि वह छह महीने तक विद्यार्थियों को मिलनेवाले वज़ीफ़े के बिना शहर में रह सके। उसकी मां ने भी चुपके से कुछ रक़म उसकी जेब में डाल दी थी – उसने उसे गिना तक नहीं। इसलिये कोम्सोमोल के सदस्य के लिये यह बात बड़ी शर्म की होगी कि अपने पिता की बचत उड़ा कर वह बिना कुछ हासिल किये घर चला आये। उसे कुछ तो सीखना ही है, और वह बस तुरन्त शुरू कर देना चाहिये। पर क्या? नाइयों के प्रशिक्षणक्रम की एक घोषणा उसकी आंखों के सामने से गुज़री। अच्छा, तो क्या उसके पिता कहा नहीं करते थे कि हुनर को खिलाने की ज़रूरत नहीं होती – वही तुम्हें खिलाता है? और यह कि कोई काम छोटा नहीं होता?

सचाई यह है कि परिवार में हर किसी को कासिम

अजीब लगा करता था, उसकी मां अगर उसे "हमारी लोई का बना नहीं है" कहा करती तो उसका बाप इसी बात को इस तरह से कहा करता कि "वह हमारे पेड़ों का फल नहीं है।" मगर दश्तेमीर की यह बात एकदम से ठीक ही नहीं थी; कुछ बातों में तो – जैसे बातूनीपन में – कासिम अपने बाप का असली बेटा था या शायद उससे भी बढ़कर, जैसा कि उसके बहुतेरे दोस्त कहा करते थे। पर कोई करे भी तो क्या? क्या हर घोंसले के अंडों से एक न एक भोंड़ा चूज़ा नहीं निकलता?

यह नहीं कि कासिम को किसी तरह भी भोंड़ा चूज़ा कहा जा सकता हो। वह बड़ा सजीला जवान था और ख़ूब बन-ठन कर रहता था, कपड़े अच्छे और सलीक़े के पहनता था – जिनके लिये उसकी मां उसकी तारीफ़ किया करती थी।

शहर में आकर एक पहला काम उसने यह किया कि एक बढ़िया पर कम क़ीमत का हलके रंग का सूट ख़रीदा, जिसकी पतलून तंग मोहरी की थी। नहीं, वह ख़ूब सजे-बजे बांकों की तरह नहीं था; उसका बस यही ख़याल था कि होनहार नाई को बालों की कटाई की तरह अपने कपड़ों से सुथरेपन और सलीक़े का भी उदाहरण पेश करना चाहिये। वह कहता था कि पुराने ज़माने में तो आदमी को अपनी शक्ल-सूरत की तरफ़ ध्यान देने की फ़ुरसत ही नहीं होती थी, सारे परिवार के भरण-पोषण के लिये की जाने वाली कमरतोड़ मशक़्क़त उसे मौक़ा ही कहां देती थी कि उसके बाल सलीक़े से कट-छंट सकें। मगर अब – जी हां, उर्कुख़ के किसी भी निवासी को ले लीजिये: सलीक़े से कपड़े पहनने

के लिये उसे कोई रोकने वाला नहीं है। पर वह करता क्या है? अच्छे से अच्छा कपड़ा ख़रीदता है, बिल्कुल ठीक– कपड़ा अच्छा भी और महंगा भी। और फिर वह जाता है और ऐसा सिलवा लाता है, जैसे बोरे में छेद कर दिये गये हों। अब वक़्त आ गया है कि हम पहाड़ी भी सजधज के साथ रहें। यह ऐसी बात है जिसे वह सामूहिक फ़ार्म की अगली आम सभा में उठायेगा। बोल्शेविक उस्मान से भी इस बारे में बात कर लेना अनुचित न होगा। और, बेशक, अब्बा से भी तो इस बारे में अच्छी-ख़ासी बहस करनी पड़ेगी।

कासिम यह तर्क-वितर्क कर ही रहा था कि उसने दो राहगीरों को पास से गुज़रते देखा। ज़रा इनकी तरफ़ तो देखो, उसने अपने आप से कहा; इनमें से एक बहुत बढ़िया सूट और टाई पहने है, पर उसके सिर पर वही भेड़ की खाल का पपाख़ा है; दूसरा राष्ट्रीय पोशाक में है जिसकी छाती पर एक ओर से दूसरी ओर तक कारतूस रखने की छोटी-छोटी थैलियां बड़ी ख़ूबसूरती से बनी हैं। उसके सिर पर विलायती टोपी है–हां, विलायती!

एक होनहार नाई और सुरुचि के पारखी के लिये इतना बहुत काफ़ी था। उसने दोनों को रोका। सचमुच, बड़ी चतुराई से मौसम की चर्चा करते हुए उसने अपनी बात शुरू की और कहा कि ये बादल बरस के रहेंगे। तब उसने अपना उपदेश पिलाना शुरू किया। यह बात रिकार्ड में आनी चाहिये कि उन आदमियों ने उसकी बात का बुरा नहीं माना–यहां तक कि उसका शुक्रिया अदा किया।

कासिम के उस्ताद ने उसे बताया था: "नाई को संस्कृति की मशाल उठाने वाला, ज़िन्दगी के नये तौर-तरीक़ों

के लिये संघर्ष करने वाला और प्रचारक होना चाहिये – और सबसे बढ़कर उसे औरों के लिये मिसाल होना चाहिये"।

और इस तरह, दश्तेमीर का बेटा, कासिम अपने गांव ख़ाली हाथ नहीं लौट रहा था। वह मशाल लिये था।

आऊल में जैसे कोई था ही नहीं। कोई फाटक नहीं चरमराया। किसी किवाड़ के बन्द होने की आवाज़ नहीं आई। न कोई कुत्ता भोंका, न कोई गाय रंभाई। न तो ईंटों की नई चिमनियों से और न ही टहनियों पर थपी मिट्टी की पुरानी चिमनियों से धुएं का गुबार उठ रहा था। आवाज़ के नाम पर उसे बस किंडरगार्टन से बच्चों की हंसी तथा चीख़-पुकारें तथा उनकी परिचारिकाओं की ताक़ीदें भर सुनाई दे जाती थीं। इन दिनों हर कोई बाहर खेतों या बाग़ों में होता है: पेड़ों की छंटाई की ज़रूरत होती है, ज़मीन को नरम करने की ज़रूरत होती है, छोटे पौधों को सिंचाई की ज़रूरत होती है।

कासिम की मां किंडरगार्टन में परिचारिका थी और वह बाड़ से घिरे बड़े बग़ीचे और खेल के मैदान के साथ वाले नीचे साक्ल्या की ओर बढ़ चला। उसे देख कर वह ख़ुशी से फूली नहीं समाई और उसने भी अपनी सारी कहानी बिना कुछ छिपाये साफ़-साफ़ कह डालीं। मां तो ख़ैर उसकी बात मान गई मगर दश्तेमीर?

"तुम फ़िक्र मत करो, अम्मी जान," कासिम ने ख़ुशी-ख़ुशी कहा। "उनसे मैं मज़े में निबट लूंगा। फिर तुम उस मशहूर नाई नूर मुहम्मद के बारे में तो जानती ही हो जिसने तर्काम के बेरहम बादशाह की हजामत बनाते हुए – यही कहेंगे न? – कि भूल से उसका सिर काट डाला और इस तरह

एक बार में ही अत्याचारी को दाढ़ी से और लोगों को अत्याचारी से निजात दिला दी? बस इसी को लेकर मैं अब्बा से बात शुरू करूंगा। तुम तो जानती ही हो कि इस तरह के चुटकुले उन्हें कितने पसन्द हैं... मगर इस पुरानी जगह की नई-नई बातें तो बताओ। कौन पैदा हुआ?.. किसके यहां?.. बच्चे का नाम?.. किसकी शादी हुई?.. किससे?.. कैसी रही शादी?.. कौन सबसे अच्छा नाचा?.. उर्कुख़ में क्या आया?.. बाहर क्या गया?"

"एक बार में एक बात, बेटा... तो पहले सुनो, सुख़ाई की शादी हो गई।"

"ख़ूब! ज़ैनब से न?.. भला हो उसका! मगर मुझे क्यों नहीं बुलाया..."

"इसमें किसी का नहीं तुम्हारा ही कसूर है। तुम्हें दावत देने के लिये उसने तुम्हारा पता पूछा, मगर हमें तक तुम्हारा पता नहीं मालूम था।"

"अच्छा, तो मैं चलूं जल्दी से उन्हें बधाई दे आऊं।"

"मगर वे घर पर होंगे भी?"

"नये शादीशुदा लोग कभी जल्दी नहीं उठते। देखो न, उनकी चिमनी से धुआं उठ रहा है।"

इस तरह की जल्दबाज़ी कोई कासिम की ही ख़ासियत नहीं थी, ऐसा हम लोगों के यहां रिवाज है। कुछ दिन बाहर रहने के बाद अपने आऊल लौटने पर रोटी का लुकमा तोड़ने से भी पहले कुछ लोगों से मिलने जाना ज़रूरी होता है—किसी नवजात शिशु के प्रफुल्ल मां-बाप को बधाई देना, किसी सद्य:मृतक के रिश्तेदारों के दुख में हिस्सा बंटाना या नवविवाहितों के सुख की कामना करना। यह पुराना रिवाज आज भी संजीदगी से निबाहा जाता है।

सुर्ख़ाई और ज़ैनब के दुतल्ले साक्ल्या में उनके साथ सुर्ख़ाई की मां, उसका विधुर बड़ा भाई ज़करिया और ज़करिया के बच्चे रहते हैं। ज़करिया बड़ा उदास-उदास रहने वाला आदमी है और इतना कम बोलता है कि अनजान आदमी उसे कभी-कभी बहरा और गूंगा तक समझ लेते हैं। यहां तक कि अपने बच्चों से भी वह ज़्यादातर आंखों और इशारों से ही बातें करता है। रात में जब बच्चे सो जाते हैं, ज़करिया अपनी दुखभरी यादें लिये बैठा रहता है और अपने कर्कश स्वर में पुराने और अकथनीय रूप से करुण मर्सिये गाता है। ग़मज़दा आदमी के स्वर जो भी सुनता है उसे कंपकंपी आ जाती है। ज़करिया कुरूप और लंगड़ा है, यद्यपि उसमें दो बैलों के बराबर ताक़त है। काठी की पेटी कसते हुए वह घोड़े को ज़मीन से ऊपर उठा सकता है। जवानी में भी उसे इस बात में कोई शुबहा नहीं था कि उसे अपनी ज़िन्दगी अकेले ही गुज़ारनी पड़ेगी, क्योंकि ऐसी लड़की कहां मिलेगी जो उस जैसे कुरूप आदमी को दूसरी बार देखना चाहेगी? इसलिये उसके अचरज और एहसानमन्दी की कोई सीमा न रही जब एक लड़की उससे मुहब्बत करने लगी। अपनी इस बीवी को वह कितना प्यार करता था और पूजता था! कैसे वह उसे छौने-सा अपनी बांहों में लिये फिरता था और उसके मज़ाक पर कैसे हंसा करता था! और चरम आनन्द के वे क्षण जब उसके बच्चे जन्मे! बीवी क्या मरी, उसकी सारी दुनिया उसके साथ मर गई और उसके लिये सूरज फिर कभी नहीं उगा। चुपचाप, अकेले, दुखी-दुखी उसने अपने बच्चे पाले-पोसे। छोटे बच्चों के पालन-पोषण में उसकी मां ने हाथ बंटाया और उसने उससे दुबारा

शादी करने के लिये कभी नहीं कहा। एक कुरूप विधुर से, जिसके तीन बच्चे भी हों, कौन शादी करना चाहेगी?

हट्टा-कट्टा ज़करिया जहां मकान बन रहे होते हैं वहां राजगीर का काम करता है। मुझे शक है कि सारे दाग़िस्तान में उसकी टक्कर का कोई दूसरा आपको मिल सकेगा।

जिस सुबह कासिम घर पहुंचा वह आंगन में लकड़ी काट रहा था और एक नज़र अपने बच्चों पर रखे हुए था जो ज़ैनब को रोटी बनाने में मदद दे रहे थे।

यूं आऊल की बेकरी की रोटियां बड़ी अच्छी होती हैं, पर उर्कुख़ के लोगों का घर की पकी शहद या बकरी के दूध के हलके नमकीन पनीर के साथ खाई जाने वाली रोटियों के बिना काम नहीं चलता। पूरी दुनिया छान डालो, मगर मक्का के आटे की इन चपटी रोटियों का कोई मुक़ाबिला नहीं, जो यहां अनन्त काल से बनाई जाती हैं, अलग-अलग मौक़ों के लिये अलग-अलग तरह की। कहीं यात्रा के लिये ले जाने वाली चीकू या मुचेरी का आटा पानी की जगह दही से साना जाता है और उन्हें ठंडा खाया जाता है, चपटी कप्रार तो बस गरमागरम ही खाई जाती है; मेहमानों के लिये वख़रन बनाई जाती है।

ज़ैनब आंगन में नाश्ते के लिये चूल्हे की गर्म-गर्म राख में कप्रार सेंक रही थी। आग कुरेदते हुए वह एक छोटा सा गीत गुनगुना रही थी जो सिराघिन के एक मशहूर बेवकूफ़ के बारे में था। अगर आपने उसकी कहानी न सुनी हो, तो लीजिये हाज़िर है:

सिराघिन के एक आदमी ने तर्काम की घाटी की ज़मीन की अपार समृद्धि के बारे में इतना सुना कि उसे एक बार ख़ुद

जाकर देख लेने की ठानी। वह घाटी के पास पहुंचा ही था पानी पड़ने लगा और उसका भेड़ की खाल का कोट इतना पानी सोख गया और भारी हो गया कि फैलने के कारण चलते हुए ज़मीन में लिथड़ने लगा। "ठीक-ठीक-ठीक!" वह चिल्ला उठा। "सही है, जो लोग कहा करते थे सब सही है। तर्कामि की धरती बड़ी सौभाग्यशालिनी है। मेरा कोट तक यहां आकर बढ़ गया।"

उसने अपना चाकू खोला, कोट के निचले हिस्से से एक पट्टी काट डाली और मन ही मन कहा: "इतने में तो एक पपाखा बन जायेगा।" वापस घर लौटते हुए उसका कोट हवा और धूप से सूख गया। उसकी नज़र नीचे गई। कोट अब उसके घुटनों तक भी नहीं पहुंचता था। "ठीक-ठीक-ठीक," उसने एक आह भरी। "हमारी धरती भी कैसी दरिद्र है! तर्कामि में जो लम्बा हो गया था वह सिराघिन पहुंच कर छोटा हो गया..."

यद्यपि खिड़की से सूरज की किरणें अन्दर आ रही थीं, पर सुर्ख़ाई अभी बिस्तर में ही पड़ा था। मगर वह सो नहीं रहा था। सिर के पीछे हाथ धरे लेटे-लेटे खिड़की में से वह उन ढलानों की ओर ताक रहा था, जिनमें गड़रियों ने अपने तम्बू गाड़ दिये थे। वह भी कितना सौभाग्यशाली आदमी था! बेशक, अभी भी वह एक साधारण गड़रिया भर था और उर्कुख़ में भी ऐसे लोग थे जिन्होंने उसके बारे में कभी नहीं सुना था, पर वह अपने आप को कोम्सोमोल के सदस्य सुर्ख़ाई के रूप में देखता था जिसके ज़िम्मे एक बड़ा रेवड़ था। "बस, बस!" उसने मन ही मन कहा। "मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि तीन साल में अपना रेवड़ दुगना कर दूंगा—

जो मैं ऐसा न कर पाऊं, तो मेरी रोटी मेरे गले में अटक जाये!" उसने हिसाब लगाया कि इसका मतलब यह होगा कि हर सौ भेड़ों से १२० मेमने सही सलामत जन्में और बड़े हों। बेशक, यह कोई बड़ी बात नहीं है मगर शुरूआत के लिये कम से कम है।

ज़ैनब ख़ुश-ख़ुश तेज़ी से उसके कमरे में घुसी, और उसके ख़यालों में। पर क्या वह यह सब उसी के लिये नहीं सोच रहा? वह उसके लिये उसकी सारी ख़ुशियां लाई थी और जो कुछ वह कर रहा था, सो उसी के लिये।

ज़ैनब को यह उम्मीद नहीं थी कि वह अभी बिस्तर में ही पड़ा होगा। नाराज़ होने का असफल-सा दिखावा करते उसने उसका कम्बल खींच लिया।

"उठो भी, आलसी कहीं के। कासिम आया है।"

"कासिम?"

"हां-हां, कासिम। बस, अब उठो न।"

"तब तक नहीं, जब तक तुम बोसा नहीं देती," सुर्ख़ाई उठ बैठा और उसने अपनी बांहें फैलाईं।

"शर्म नहीं आती तुम्हें!"

शर्म काहे की? वैसे, यह तो है कि दार्घिन भाषा का "बैदरा" शब्द, जिसका अर्थ "बोसा" होता है, हमारे साहित्य में मुश्किल से ही मिलेगा, और बातचीत में तो और भी नहीं। हर आदमी के सामने तो यह बोला भी नहीं जा सकता। और जैसा कि आपने देखा, नवोढ़ा के एकान्त कक्ष में भी इस सीधे-सीधे शब्द से गालों पर लाली आ सकती है। और फिर, यह कोई ऐसी विचित्र बात नहीं है, क्योंकि अज्ञानमय शताब्दियों के मूर्खतापूर्ण रीति-रिवाजों ने लोगों

को प्यार, नज़ाकत और दुलार ही नहीं, अपितु उनको व्यक्त करने वाले शब्दों से भी नफ़रत करने के लिये मजबूर कर दिया था। हमारे महान कवि बतिराई के ज़माने से पहले तक दार्घिन के लोगों में प्यार के लिये कहे जाने वाले शब्द, दिगाई, तक का प्रयोग अच्छा नहीं समझा जाता था।

"और मैं शर्मिन्दा क्यों होऊं, भला?" सुर्ख़ाई ने पूछा।

"यह अजीब-सा शब्द! ..और फिर–" ज़ैनब अपने शौहर पर झुक गई। "और फिर–यह कहे बिना ही बेहतर है!"

"ठीक कह रही हो, मेरी जान। अब मैं यह शब्द अपने मुंह से नहीं निकालूंगा।" ज़ैनब की कोमल, कांपती देह को अपनी बांहों में भरते एक दृढ़ चुम्बन में सुर्ख़ाई ने अपने होंठ उसके होंठों से भींचे।

"हैं! हैं!" ज़ैनब बुरी तरह से लाल हुई जा रही थी। "क्या तुम्हें ज़रा भी शर्म नहीं है? और फिर सूरज की ऐसी रोशनी में!"

"सूरज को भी जी भर कर देख लेने दो! वह देखे हमें– हमेशा देखे! सूर्य का स्वागत है!" सुर्ख़ाई एक नटखट बालक की तरह अपने बिस्तर पर ही उछल-कूद मचाने लगा, उसका सिर एक धरन से जा टकराया, फिर कूदकर वह फ़र्श पर आ रहा।

"देखो तो कासिम मेरे लिये क्या लाया है," ज़ैनब ने अपने सिर पर एक हलके नीले रंग का रूमाल लपेट लिया जिस पर सफ़ेद फ़ाख़्ताएं बनी थीं। "पसन्द है तुम्हें? क्या यह पहन कर मैं ज़्यादा ख़ूबसूरत नहीं लगती?"

"तुम्हारी वजह से यह ज़्यादा ख़ूबसूरत लगने लगा है...

मगर कासिम है कहां? उसे मेहमानों वाले कमरे में बैठाओ। मैं बस चुटकी बजाते आया।"

"वहीं है वह इस वक़्त। उसे वहां बैठा कर मैंने उसका मन बहलाने के लिये तुम्हारी ढेर सारी तस्वीरें थमा दी हैं।"

"कैसी होशियार है! .. हां, हमारी शादी का हलवा क्या थोड़ा-बहुत उसके लिये नहीं बचा?"

"कहां ख़याल है तुम्हारा? उसे ख़त्म हुए तो दस दिन हुए।"

"तब फिर उसे क्या खिलायेंगे?"

"गरमागरम चपाती, पनीर और शराब।"

"वाह! तो तुम चपातियां सेंक रही थीं?"

"अ... हां।"

"ख़ूब! अब देखेंगे कि कितनी कुशल गृहणी मिली है," कहकर सुर्ख़ाई हंसा, क्योंकि उर्कुख़ में जो मक्का की जितनी अच्छी रोटी बना सके, उसे उतनी ही कुशल गृहणी समझा जाता है। अपने मज़बूत हाथ अपनी बीवी के कन्धों पर रखते हुए उसने उसकी आनंद भरी आंखों में देखा और एकदम से कहा: "शुक्रिया!"

"किस बात का?"

"इसका कि तुम हो—बस। और इस असलियत का कि मैं ज़िन्दा हूं। और तुम्हारा, जिसने मुझे पंख दे दिये हैं।"

सुर्ख़ाई बरामदे की ओर दौड़ गया और वहां पड़ा चक्का उठाया। पुराने ज़माने में ये भारी-भारी चक्के उस मिट्टी को पीसने के काम आते थे, जो सपाट छत पर इसलिये डाली जाती थी कि छत न टपके। पर इधर जब से छत के लिये स्लेट का इस्तेमाल किया जाने लगा है तब से यह

चक्का खेलकूद और वर्जिश के ही काम आने लगा है। सुर्खाई ने उसे कई बार ऊपर-नीचे किया, एक बाल्टी बर्फ़ीला ठंडा पानी अपने सिर और कन्धों पर उड़ेला, तौलिया, जो ज़ैनब ले आई थी, लिया और इस तरह कस-कस कर रगड़ा कि उसकी चमड़ी सुर्ख हो गयी। फिर कमीज़ के बटन बन्द करते उसने पुकारा :

"कहो कासिम! इन्तज़ार करते-करते ऊबे तो नहीं?"

कासिम ने बाहर बरामदे में आकर बड़ी गर्मजोशी से सुर्खाई से हाथ मिलाया और उसे शादीशुदा होने की बधाई दी।

"मैं तुम्हारी तस्वीरें देख कर इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि आदमियों की बजाय मेमने तुम्हारे साथ तस्वीर खिंचवाने के फेर में ज़्यादा रहते हैं।"

"इसमें मेरा क्या कुसूर है, भाई? मेमनों से मुझे मुहब्बत है। जल्दी ही मैं ख़ुद भेड़ की तरह मिमियाने लगूंगा।"

"चाहो तो अभी शुरू कर दो, मुझे कोई फ़र्क नहीं पड़ता... यह एक नेक काम हुआ, तुम्हारा और ज़ैनब का गठबन्धन। मैं ख़ुद यही करूं, पर मैं ऐसी किसी को जानता ही नहीं..."

"मैं तुम्हारी मदद करूंगा ढूंढ़ने में," अपने दोस्त को ऊपर से नीचे तक ताकते हुए दिल्लगी करता सुर्खाई बोला।

"ये ताक-झांक क्या लगा रखी है? मेरा सूट पसन्द आया?"

"बुरा नहीं है... ज़ैनब! अगली गर्मियों में हम लोग शहर चलेंगे और वहीं से अपने कपड़े बनवायेंगे। क्या ख़याल है तुम्हारा?"

एक और मिलने वाले के आ जाने से बातचीत की कड़ी टूट गई। हमेशा की तरह अपनी स्कूल की किताबों से लदी-फंदी किस-तमान सीढ़ियां चढ़ते हुए कुशल-क्षेम पूछ रही थी और बधाइयां दे रही थी। ज़ैनब ख़ुशी में भरी उसकी ओर दौड़ी। किस-तमान उनकी शादी में शरीक़ नहीं हुई थी क्योंकि वह उस वक़्त तक ज़ैनब से नाराज़ थी कि उसने स्कूल न छोड़ने की प्रतिज्ञा क्यों तोड़ी। पर वह देर तक कोई बात मन में नहीं रखती थी और फिर उसके अब्बा ने भी उसे समझाया कि उसका यह बर्त्ताव ठीक नहीं है और उसे नवदम्पति को बधाई देने जाना ही चाहिए। "याद रखो बिटिया," ज़ुल्फ़िकार ने उसे समझाते हुए कहा था, "हमारे पहाड़ों में प्यार को आज़ाद होने के लिए बड़ी लम्बी लड़ाई लड़नी पड़ी है।"

"मैं जानती थी कि तुम आओगी। ज़रूर आओगी।" ज़ैनब ख़ुशी के मारे फूली नहीं समा रही थी।

किस-तमान ने अपनी बधाई फिर से दुहराई, ज़ैनब को शादी का उपहार दिया और सुर्ख़ाई और कासिम से हाथ मिलाया। ज़ैनब को लगा कि उसके यहां जो दो मिलने वाले आये हुए हैं, उन्होंने एक दूसरे की ओर अचरज से देखा है, जैसे कि वे पहली बार मिल रहे हों।

"चलो, अन्दर चलो, मित्रो। मैं कोठरी से शराब लेकर आती हूं। और तुम, सुर्ख़ाई, अपने मेहमानों को देखो-भालो।"

"बैठो, ज़ैनब ने कग्रार सेंकी है।"

"मैं माफ़ी चाहती हूं, मुझे स्कूल पहुंचने की जल्दी है," किस-तमान बोली।

"अफ़सोस! पर दुबारा जल्दी ही आना—और यह नहीं कि इस बार की तरह आओ और चल दो।" किस-तमान सीढ़ियों से नीचे उतरने लगी, तो सुर्खाई कासिम को मेहमानों वाले कमरे में ले गया।

ज़ैनब को लगा कि सुर्खाई के ज़ोर दे कर रुकने के लिए न कहने का किस-तमान कहीं बुरा न मान ले। वह अबाबील की तरह अपनी सहेली के पीछे भागी, उसे अपनी बांहों में लेकर और किसी कठोर मां का सामना करती अपराधिनी छोटी लड़की की तरह उसकी आंखों में ताकते हुए कहने लगी:

"अच्छी बहन, तुम सुर्खाई या मुझसे नाराज़ न होना। काश तुम्हें पता होता—" भावावेश में उसकी आवाज़ रूंधने लगी। उसने एक गहरी सांस ली और पहले से भी धीरे-धीरे अपनी बात जारी की: "काश तुम्हें पता होता कि मैं कितनी ख़ुश हूं— इतनी ख़ुश कि अपनी ख़ुशी को टुकड़ों में बांट कर मैं उसे हर मिलने वाले को तक़सीम कर देना चाहती हूं, हर एक को!" एक बार के लिए ज़ैनब न शरमाई न हकलाई। उसकी आंखों में ख़ुशी के आंसू कंपकंपा और चमक रहे थे। "मैं चिल्ला-चिल्ला कर कहना चाहती हूं कि 'लोगो! तुम्हारा शुक्रिया, मैं ख़ुश हूं, ख़ुश, ख़ुश।' बहन, तुम भी मेरे साथ ख़ुश होओ। और मुझ पर रहम करो और मुझे बुरा मत समझो।"

किस-तमान इससे इतनी विभोर हो गई कि अपनी बात कहने के लिए उपयुक्त शब्द ढूंढ़ने में उसे काफ़ी जद्दोजहद करनी पड़ी। "मुझे ख़ुशी है—तुम्हारे लिये ख़ुशी है।"

"दरअसल ?" ज़ैनब आनन्द से दमकने लगी।

"दरअसल और सचमुच, मेरी जान।"

प्रायः औपचारिक ढंग से ही बात करने वाली किस-तमान के मुंह से "मेरी जान" का प्यार भरा शब्द ज़रा अजीब-सा लगा। वह स्कूल की ओर तेज़ी से जाने लगी, तो ज़ैनब थोड़ी देर तक खड़ी-खड़ी उसकी ओझल होती आकृति को देखती रही। 'हां, किस-तमान,' ज़ैनब ने सोचा, 'तुम अब भी मुझसे थोड़ी-बहुत इसलिए नाराज़ हो कि मैंने अपना वचन नहीं निभाया, पर ज़रा इन्तज़ार करो! मैं अपनी पढ़ाई चालू रखूंगी। सुर्ख़ाई ने कहा था कि मुझे पढ़ना चाहिए — और मैं पढ़ूंगी।'

आज किस-तमान अकेली स्कूल जा रही थी, घण्टी लटकाये आगे-आगे चलने वाली उस भेड़ की तरह, जो किसी धुन में चट्टानी ढलान पर हौले-हौले चढ़ती जाती है, जब कि रेवड़ की बाकी भेड़ें दूर कहीं नीचे बिना किसी अगुआ के रह जाती हैं। शिक्षा समाप्त होने और अन्तिम परीक्षाएं होने में कुछ ही हफ़्ते शेष थे।

रास्ते में उसे सकीनत मिली, जो अपने आऊल से पांच किलोमीटर चल कर स्कूल आती थी।

"ऊफ़! मैं तो थक गई। इस स्कूल के धन्धे से शैतान ही सुलटे!"

"अगर इतनी नफ़रत है इससे, तो तुम आती ही क्यों हो? कोई तुम्हारे साथ ज़बर्दस्ती तो करता नहीं। तीन दिन से तुम नहीं आ रही थीं — आज भी न आतीं।"

"शुक्रिया!" सकीनत ने तपाक से कहा। "मैं तुम्हारी इजाज़त तो मांग नहीं रही।"

एक पर्वत श्रेणी के ऊंट की तरह उठे कुब के पीछे से चांद बच्चे के गुब्बारे-सा निकल कर तारों की टिमटिमाहट धुंधली कर देता है।

आऊल का पुराना हिस्सा, जहां सटे-सटे, तेज़ ढलान से अपनी पीठ सटाये साक्ल्या चांदनी में नहाये हैं और नया हिस्सा भी, जहां ऊंचे-ऊंचे वृक्षों की काली छायाएं घाटी में फैले टाइल या स्लेट की छतों वाले मकानों को कुछ छिपा लेती हैं, एक चित्रकार के स्वप्न-सा लगता है... मरम्मत न होने के कारण पुराने साक्ल्या एक-एक करके गिरते जाते हैं और उनमें रहने वाले नीचे की लम्बी-चौड़ी घाटी में उतर आते हैं जहां घरों के चारों ओर बागों के लिए काफ़ी जगह है और जहां नये फ़र्नीचर, रेडियो या कपड़ा धोने की मशीनें लेकर आने वाली लारियां हर दरवाज़े तक पहुंचा करती हैं। ज़रा उस पुराने हिस्से में कोई चीज़ पहुंचाने की कोशिश तो कीजिये, जहां घरों के बीच की पगडंडियों से हो कर लदा हुआ गधा भी नहीं गुज़र सकता! पर कुछ लोग अपने पुराने साक्ल्याओं से उसी तरह चिपटे हुए हैं जिस तरह ये साक्ल्या पहाड़ों से चिपटे हैं और जिन घरों में उन्होंने इतने दिन गुज़रे हैं, उनको छोड़ने की उन्हें कोई जल्दी नहीं।

कुछ ही दिन पहले टोली-नायक उमलात के मां-बाप ने अपना पुराना साक्ल्या छोड़ कर घाटी में अपने लिये एक नया घर बनाया था।

गाय का दूध दुह चुकने पर उमलात की मां, ज़ाज़ा, ऊपर गई और बालकनी पर से, चिन्तित-सी, गांव के क्लब की ओर देखने लगी। अभी वहां पर रोशनी थी। इसका मतलब कि अभी उसके बेटे के घर पहुंचने में कुछ देर तो

है ही। कल की सुबह चरागाहों की ओर जाते हुए उसके शौहर, हसन, ने उससे कहा था कि वह उमलात को अपने मां-बाप का फ़ैसला बता दे–और ज़ाज़ा परेशान थी।

उमलात और हिज़री टहलते हुए क्लब से अपने घर की राह जा रहे थे। उनके पैरों के तले चांदनी युवा वृक्षों की छायाओं का कालीन जैसा अजीब उलझा हुआ नमूना बना रही थी।

"आज रात के नाटक में तमादा के रूप में तुमने ख़ूब काम किया।" उमलात ने कहा।

"कुछ दिन और इन्तज़ार करो, जब तक मैं तुम्हारी शादी में तमादा नहीं बनता। तुम्हारे लिये मैं एक सचमुच का तमादा बनूंगा," हिज़री ने शरारत भरे लहजे में कहा।

"मेरी शादी में? पहले अपनी ही शादी में!"

"मेरी ही शादी और मैं ही दूल्हे की सेहत के जाम के लिए दरख्वास्त करूं और पुरोहिताई भी करूं? यह भी क्या मज़ाक होगा!.. फिर भी मज़ाकिया शायरी के लिए यह एक अच्छा ख़याल है।"

"जो हो," एक ठंडी सांस भरते उमलात बोला, "शादियों के बारे में सोचने के बजाय और बहुत सी चीज़ें मेरे दिमाग़ में हैं।" उसका बड़ा मन था कि अपने दोस्त को अपना विश्वासपात्र बनाये और रीता के बारे में बताये। इतने दिन हो गये और उसका एक भी ख़त नहीं आया। आख़िर बात क्या हुई?

"भई, जहां तक मेरा सवाल है, मैंने तय कर लिया है। मैं शादी करने जा रहा हूं," हिज़री ने बड़ी दृढ़ता के साथ बताया। उमलात यह तय नहीं कर पाता था कि "हमारा

एक्टर" कब गम्भीर होता है और कब "नाटक कर रहा होता है," पर इस बार तो लगता था कि वह मज़ाक नहीं कर रहा। "यह बात अपने तक ही रखना," हिज़री ने अपनी बात जारी रखी, जैसे बांध तोड़ कर कोई नदी बह निकली हो। "मैं मुहब्बत करने लगा हूं। यह एक अजीब सा एहसास है और कुछ-कुछ डराने वाला भी।"

उमलात अब पूरे ध्यान से सुनने लगा। "ऐसी कोई जिसे मैं जानता होऊं?" उसने पूछा। "मेरी टोली की लड़कियों में से कोई?"

"नहीं।"

"कौन है? बताओ न!"

"तुम उसे अच्छी तरह जानते हो। उर्कुख़ का हर आदमी उसे जानता है।"

"अच्छा फिर, उसका नाम? मैं अन्दाज़ नहीं लगा पा रहा। मुझे कोई अनुमान ही नहीं—"

"अपने पहाड़ों में उसकी-सी आवाज़ भला और किसकी है? बुलबुल की? वाह! बुलबुल तो पंखों की एक गेंद भर है—और एक गाने वाली गौरैया से उसकी तुलना!" हिज़री ने अपना महाकाव्य ख़त्म किया, एक आह भरी, और जैसे ग़ौर से सुनने लगा, इस उम्मीद में कि रात में कोई गाती हुई आवाज़ सुनाई पड़ जाये।

"अरे! नसीबा न!"

"और कौन?.. तुम तो जानते हो, बिरादर कि मैं उसे अपने दिमाग़ से निकाल नहीं पाता। हर वक़्त मुझे उसकी आवाज़ सुनाई देती रहती है।" वह चुप हो गया, फिर हौले-हौले गाने लगा:

गुज़रती हो अक्सर मेरे पास से तुम
मगर क्यों नज़र भी न ऊपर उठातीं?
क्या सुनती नहीं हो मेरी आह भी तुम
जो दिल में, न अन्दाज़ इसका लगातीं?
जो दिन-रात रहता तेरी याद में ही
बताओ, न क्यों उसको ख़ातिर में लातीं?
क्या बहरी हो तुम, या कि आंखें नहीं हैं?
नहीं देख सकतीं, नहीं सुन या पातीं?
मैं राहों की उड़ती हुई धूल हूं क्या?
कि पत्थर हूं या पेड़, इतना बतातीं?
मेरी जान, गाती हो सब के लिए तुम
मगर मेरी ख़ातिर कभी भी न गातीं।

"हमारे एक्टर" ने वहशियाना अन्दाज़ में अपनी बांहें फैलायीं। "मगर उसके लिए तो मैं अदृश्य पुरुष जैसा हूं। आख़िर क्या करूं मैं कि उसे महसूस हो कि मेरी भी हस्ती है?"

"उस पर कविताएं लिखो। आख़िर तुम शायर हो।"

"सिर्फ़ हमारा बतिराई ही उसके बारे में लिख सकता था," ठंडी सांस भरते हिज़री बोला। "यह मेरे बस की बात नहीं... या अगर कहीं कटार से मैं एक जंगली सूअर मार लाऊं, तो..."

"यह एक बात हुई," उमलात हंसा। "वह जो भेड़ियों के जंगल से सटा मक्का का खेत है न, सूअर उसका सत्यानाश कर डालते हैं।"

"मुश्किल तो यह है कि जब मैं वहां होता हूं, तो

सूग्रर नहीं होते ग्रौर जब सूग्रर वहां होते हैं, तो मैं कहीं ग्रौर होता हूं।"

"लगता है कि उन्होंने तुम्हारी बात सुन ली है ग्रौर जान के डर से भागे-भागे फिरते हैं।"

"ठीक है, ख़ूब हंस लो, पर मेरे लिये यह हंसी की बात नहीं है। इसी पिछले हफ़्ते मैं रात के पहरेदार ग्रली की जगह था। रात भर एक पत्ता तक नहीं हिला। जब सुबह कामगार ग्राने लगे, तो मैं चल दिया ग्रौर झील तक ही गया होऊंगा कि मुझे शोर सुनाई दिया: 'ग्ररे, हिज़री, तुम भी कैसे पहरेदार हो? सूग्रर मक्का में हैं।' मैं वापस दौड़ा ग्रौर..."

"...ग्रौर सबसे बड़े सूग्रर को ढेर कर दिया!" उमलात ने जैसे रास्ते के एक लैम्प में ग्रपने दोस्त का चेहरा देखा, तुरन्त ग्रपनी बात का स्वर बदल दिया। "नहीं! नहीं! मैं मज़ाक़ नहीं उड़ा रहा। ध्यान से सुन रहा हूं। फिर क्या हुग्रा?"

"तो मैं वापस दौड़ा। वहां सूग्रर का नाम नहीं था—ग्रौर क़रीब-क़रीब यही हाल मक्का का भी था, तक़दीर खोटी थी।"

"तुम ठीक कहते हो, भाई; यह मज़ाक की बात नहीं है। जानवर देखते-देखते फ़सलें तहस-नहस कर डालते हैं... तुम्हारा शुक्रिया कि तुमने मुझे ग्रपनी गुप्त बात बताने लायक समझा। क्या मैं तुम्हारी किसी तरह की कोई मदद कर सकता हूं? उसके मां-बाप ग्रक्सर हमारे यहां ग्राया करते हैं, शायद मैं उनके कानों में एकाध शब्द डाल सकूं?"

"कोशिश कर सकते हो... यह लो, हम लोग तुम्हारे फाटक तक ग्रा गये। ग्राग्रो उम्मीद करें कि सब कुशल ही होगा।"

"तुम रात को मेरे साथ पशुओं की रखवाली पर चलना तो नहीं चाहोगे?"

"आज की रात नहीं, पर अगर तुम चाहो तो किसी और रात गड़रियों की एवज़ी कर दूंगा।"

इस प्रकार वे इस भाव से पृथक हुए कि पहाड़ी चरागाहों में वे एक रात साथ-साथ बितायेंगे...

उमलात ने धक्का देकर फाटक खोला और आंगन में दाख़िल हुआ, पर रात इतनी ख़ूबसूरत थी कि उसका अन्दर जाने का मन नहीं हुआ। ज्यों ही वह टूटे हुए छकड़े के पास से गुज़रा, वह सोचने लगा कि पुराने ज़माने से, जब कि जिस घर में छकड़ा हो उसे समृद्ध समझा जाता था, अब दिन कितने बदल गये हैं। वह मक्का के खेत में से उखाड़ी गई घास के एक ढेर के पास गया। घास अभी मुरझाई नहीं थी और उसमें से तेज़, मीठी और चंचल बना देने वाली गंध आ रही थी। वह उस ढेर पर लेट गया, विचारमग्न-सा एक डंठल कुतरते हुए चांदी के दानों से कसीदा किये गहरे नीले रेशम के आकाश को निहारने लगा। उसे हिज़री पर हंसने का क्या हक़ है? ख़ुद उसकी हालत क्या उससे कम बुरी है? इतने ख़त भेजे रीता को और जवाब में एक लाइन नहीं, एक छोटा-सा तार तक नहीं। उसने वादा किया था कि वह वापस आयेगी और अब... क्या इसका मतलब यह हुआ कि...?

एक झबरा काकेशियाई रखवाला कुत्ता उसके पास चला आया।

"कोई फ़ायदा नहीं, जुलबार्स," उसने तल्ख़ी के साथ कहा। "रीता मुझे भूल गई है। मैं उसे एक ख़त और लिखूंगा और फिर... फिर इसका मतलब यह होगा कि हम फिर

जहां के तहां, तुम और मैं। इस बारे में हम कुछ कर ही क्या सकते हैं... इसलिए, दो चार कौर खाना और फिर चरागाह को चल देना। क्या ख़याल है तुम्हारा?"

कुत्ता एक बार हलका-सा भौंक भर दिया।

"अच्छा, तो फिर तय रहा। अफ़सोस कि तुमसे उसके बारे में बात कर सकना भी मुश्किल है। तुम बातूनी भी तो नहीं हो।"

उमलात अन्दर चला गया। उसका बाप अभी तक नहीं लौटा था। उसकी मां ख़िन्कल बना रही थी, जो दूध की लप्सी होती है और उसमें पकौड़ियां पड़ी रहती हैं...

हिज़री अभी भी अपनी मां ज़मुर्रद के साथ आऊल के पुराने हिस्से में रहता था, इसलिए नहीं कि उसे संकरी गलियां, सूने आंगन या अपने चारों ओर के उजाड़ साक्ल्या पसन्द थे, पर महज़ इसलिए कि उनके पास इतना पैसा नहीं था कि नीचे, घाटी में नया मकान बना सकें। सामूहिक फ़ार्म ने गांव के स्कूल में पंद्रह साल से पढ़ाने वाली ज़मुर्रद को घर बनाने में सहायता देने के लिए बार-बार कहा। पर वह किसी को यह सोचने का भी मौक़ा नहीं देना चाहती थी कि उसके साथ ख़ास रियायत बरती गई है, ख़ास तौर से अब, जब कि वह फ़ार्म के पार्टी ब्यूरो में चुन ली गई है। किसी के लिए भी यह कह सकना कितना आसान होगा कि नया पद पाते ही उसने जो पहला काम किया, वह अपने ही फ़ायदे के लिए।

विचारों में खोया हिज़री ग़लत मोड़ मुड़ गया और उसे इसका पता चले कि उसके पहले वह हबीब के फाटक पर

था। देर तक नसीबा की खिड़की की ग्रोर देखता वह वहां खड़ा रहा। खिड़की से रोशनी ग्रा रही थी। फिर रोशनी बुझ गई, पर इस बीच उसे खिड़की पर नसीबा की एक झलक मिल ही गई। क्या वह यह भी सोच सकती है कि वह यहां खड़ा है? एक वाहियात ख़याल — वह तो बस खिड़की बन्द करने ग्राई थी... क्या हो गया है नसीबा को इन दिनों? हर शाम वह क्लब में उससे मिला करता था, उससे बातें करता था, ग्रौर उसका गाना सुना करता था, पर ग्रब तो वैसा कुछ नहीं रह गया था — नसीबा मुश्किल से ही कभी दरवाज़े के बाहर दीखती है ग्रौर ऐसा लगता है कि वह जान-बूझ कर लोगों से मिलने से बचना चाहती है। ग्राख़िर भला क्यों?

दिमाग़ में हर तरह के ग्रनुमान दौड़ाता हिज़री न चाहते हुए भी चल दिया...

"मां," उमलात ने बड़ी ग्रधीरता के साथ कहा। "मुझे रात को जानवरों की रखवाली पर जाना है। कम-से-कम एक गिलास चाय तो दे दो?"

"ग्रभी देती हूं, बेटा। फिर चाय ही क्या? तूने दुल्हन के लिए कहा होता तो कोई बात भी थी।" बात को धीरे-धीरे, यद्यपि बहुत कुशलतापूर्वक नहीं, ग्रपने मन्तव्य की ग्रोर मोड़ते हुए ज़ाज़ा ने चोरी से एक नज़र ग्रपने बेटे की ग्रोर देखा।

उमलात को इस तरह की बेकार की बातें पसन्द नहीं थीं, इसलिए मां की बात को ग्रनसुनी-सा करते उसने पूछा:

"ग्रब्बा क्या रात भर रेवड़ के साथ ही रहेंगे?"

"पता नहीं मुझे। बहुत करके तो वह रात में आ जायेंगे"। ज़ाज़ा ने एक तश्तरी में सूप उंड़ेला, रोटी काटकर रखी और अपने बेटे के बगल में आकर बैठ गई।

"तुम्हारे ख़याल से वह आ जायेंगे?" कुछ भूख मिटी तो उमलात ने पूछा। "मैं उनका घोड़ा ले जाना चाहता था।"

"यह रात-रात की रखवाली!" ज़ाज़ा की आवाज़ में ग़ुस्से का पुट आ गया था। वह उठकर अपने बेटे के लिए एक गिलास चाय उंड़ेलने लगी।

"आज तुम इतनी नाराज़ क्यों हो, मां? क्या तुम समझती हो कि मैं पी-वी कर आया हूं, या कुछ?"

"न, बेटा। मैं जानती हूं कि तुम डाकिये रशीद के क़दमों पर नहीं चल रहे हो। ऐसी कोई बात मेरे मन में नहीं है।"

"अच्छा, तो फिर क्या है तुम्हारे मन में?"

"तुम, मेरे बेटे।"

"मेरे बारे में सोचने की क्या बात है भला? मैं कोई बच्चा तो नहीं हूं।"

"तुम छोटे थे तो मेरी चिन्तायें भी छोटी थीं। मगर अब..." ज़ाज़ा ने एक हलकी-सी सिसकी भरी।

"ओह, मां, मेहरबानी कर ये रोना-धोना छोड़ो। यह बताओ कि बात क्या है। क्या अब्बा के बारे में कुछ?"

"तुम्हारी उम्र के हर लड़के की शादी हो गई। तुम्हीं एक अकेले ऐसे हो..."

"यह एकदम से ऐसी क्या जल्दी आ पड़ी? एक महीना रुको। मैं वादा करता हूं कि इससे ज़्यादा इन्तज़ार तुम्हें नहीं कराऊंगा।"

"यह कहावत तो तुम जानते ही हो—परदेसी से शादी और फिर बरबादी! यह मत सोचना कि मैं अन्धी या गूंगी हूं। मैंने बेकरी के पास सुना था कि तुम उस रूसी लड़की की वापसी का इन्तज़ार कर रहे हो।"

"और यह हक़ीक़त है, मां," उमलात ने सीधे ज़ाज़ा की आंखों में देखा; ऐसी परिस्थितियों में उसकी अन्तरात्मा उसे इधर-उधर की बात नहीं करने देती। पर ज़ाज़ा इस खरे जवाब से सकते में आ गई।

"तुम इस रूसी लड़की को चाहते हो?" उसने हांफ़ते हुए कहा। अपनी आंखें पोंछ कर आवाज़ ऊंची कर वह बोली: "तो तुम ख़ानदान के नाम पर बट्टा लगाओगे? हमारे पुरखे कब्रों में करवटें बदलने लगेंगे... तुम्हें याद नहीं, लोग कहते हैं कि वह दूसरा उमलात, रशीद का छोटा भाई, जब फ़ौज में था, तो उसने एक रूसी लड़की से शादी कर ली थी? गांव भर ने उसे जी भर कर कोसा था। क्या अपने उर्कुख़ में लड़कियां कम हैं? भरी पड़ी हैं यहां।"

"और उनमें से एक भी मेरे लिये नहीं है।" उमलात ने अपना चाय का गिलास उलट कर रख दिया, जिसका मतलब था कि जहां तक उसकी बात है, चाय के साथ-साथ बातचीत भी ख़त्म।

"हम महज़ तुम्हारी ही ख़ुशी की बात सोच रहे हैं।"

"और शायद उसके लिये तुम्हें मेरे वास्ते एक दुल्हन भी मिल गई है?" उमलात हंसा। "लोगों का कहना है कि पुराने ज़माने ऐसा ही होता था।" वह उठने ही वाला था कि उसकी मां ने उसे रोक कर उसके लिए एक गिलास चाय

ग्रौर उड़ेली ग्रौर उसके हाथ में थमा दी। उसके ग्रौर नज़दीक ग्राते हुए वह बोली :

"हां, हमने तुम्हारे वास्ते दुल्हन ढूंढ़ ली है—हबीब की नसीबा। वह है तुम्हारे लायक दुल्हन।"

गिलास उमलात के हाथ से छूट कर गिर पड़ा ग्रौर वह ग्रचरज के साथ ग्रपनी मां को ताकने लगा। "नसीबा?" वह साश्चर्य बोला।

"हां, नसीबा। मैं जानती हूं कि तुम्हें उसका क्लब में लोगों के सामने गाना पसन्द नहीं है, मगर..."

"किसने कहा कि मुझे पसन्द नहीं है?"

"ग्रच्छा, तो तुम्हें इससे कोई एतराज़ नहीं?"

"उसकी जैसी ग्रावाज़ के ख़िलाफ़ कोई कहेगा भी क्या!"

"वह बड़ी ग्रच्छी, फ़रमाबरदार ग्रौर ख़ूबसूरत लड़की है। ग्रौर ग्रच्छे ख़ानदान की है— किसी ऐरे-ग़ैरे के यहां की नहीं। ग्रौर वे हमारे नाते-गोते के भी होते हैं—नज़दीकी रिश्तेदार तो नहीं, मगर हां नाते-गोते के।"

हिज़री से हुई बात को याद कर उमलात ने बात मज़ाक में उड़ाने की सोची ग्रौर ज़ोर से हंस पड़ा।

"तुम हंस क्यों रहे हो? वह बुरी लड़की थोड़े ही है।"

"उसके ख़िलाफ़ मैं एक लफ़्ज़ नहीं कह रहा। पर नसीबा ग्रपनी पढ़ाई में लगी है। मैं उसे स्कूल छोड़ते नहीं देख सकता।"

"वह पहले ही छोड़ चुकी है।"

"क्या मतलब तुम्हारा?"

"वही, जो मैंने कहा। वह स्कूल छोड़ चुकी है।"

"मैं ऐसी लड़की से कैसे शादी कर सकता हूं, जो

अपनी पढ़ाई छोड़ दे, जब कि मैं अपनी पढ़ाई जारी करना चाहता हूं? और वह अभी बच्ची ही तो है।"

"अठारह की हो गई। पुराना ज़माना होता तो अब तक वह दो-तीन बच्चों की मां होती।"

"भूल जाओ पुराना ज़माना। वह हमेशा के लिए बीत गया। और फिर किसी दूसरे वक़्त इस बारे में बात करेंगे।"

"हां-हां! तब तक के लिए टाल दूं, जब तक वह रूसी लड़की नहीं आ जाती!"

"मैं उससे मुहब्बत करता हूं। और मुझे बस यही अफ़सोस है कि उसके जाने से पहले मैंने उससे शादी क्यों नहीं कर ली।"

"ज़रा होश में आओ! सोचो तो कि जिसका तुम इन्तज़ार कर रहे हो और जिसके ग़म में सूखे जा रहे हो, वह है कौन... क्या तुम सोचते हो कि मुझे पता ही नहीं कि तुम उसे हर रोज़ ख़त लिखते हो? और उसका भी कोई ख़त आया? उसने एक ख़त लिखा ज़रूर—पर वह ग्राम सोवियत को और उसमें लिखा है कि वह वापस नहीं आयेगी। पर उसने तुम्हें एक लफ़्ज़ नहीं लिखा। समझे! अब बोलो क्या कहते हो?" ज़ाज़ा जानती थी कि इससे उसके बेटे को चोट पहुंच रही है और उसने इसे आख़िरी दांव के रूप में रख छोड़ा था। "वह तुमसे मुहब्बत नहीं करती, मेरे बेटे। मेरा तो ख़याल है कि उसकी कभी की शादी हो गई और यही वजह है कि वह वापस नहीं आ रही।"

"बस-बस! और मैं कुछ नहीं सुनूंगा।" वह उठ कर खिड़की तक गया। "और जहां तक नसीबा की बात है—उस लड़की को परेशान करना बन्द करो।"

"ख़बरदार, अपनी मां से इस तरह मत बोलो। क्या तुम हमारे ख़ानदान का नाम कीचड़ में घसीटोगे?" क़रीब-क़रीब चीखती हुई सी वह बोली: "शादी तय हो गई है। यह आख़िरी फ़ैसला है। अब से एक महीने के बाद शादी के ढोल बजने लगेंगे।"

उमलात घूमा, अपनी मां को कन्धों से पकड़ उसकी आंखों में देखने लगा। "क्या यह सच है, मां?" उसने पूछा। "तुम मज़ाक तो नहीं कर रहीं? क्या सचमुच तुम लोग यह सब तय कर चुके हो?"

ज़ाज़ा ने सिर लटका लिया। बस अभी उसे यह महसूस होने लगा था कि उसने एक ऐसी ग़लती कर डाली है जो सुधारी नहीं जा सकती।

"यह सच है, मेरे बेटे। सब तय हो चुका है।"

"क्या कर डाला तुमने? यह क्या कर डाला तुमने?" उसने निराशा में अपना सिर थाम लिया। "तुमने मुझे बताया क्यों नहीं कि तुम लोग क्या करने जा रहे हो? और क्या नसीबा से तुमने पूछ लिया है?"

"उसके मां-बाप राज़ी हैं," ज़ाज़ा की आवाज़ दबी-दबी थी। वह अपने बेटे के क्रोधभरे परेशान चेहरे को देख कर डर गई थी।

"समझ में नहीं आता मेरी। क्या मेरी शादी उसके मां-बाप से हो रही है या मेरे मां-बाप की शादी नसीबा से? क्या घपला है—क्या ख़ूब घपला है!"

"तुम्हारे अब्बा ने ज़ोर दिया। और मैंने भी। मुझे घर में दो मज़बूत जवान हाथों की ज़रूरत है। मेरी उम्र काफ़ी हो गई है, बेटा, मैं बूढ़ी हो गई हूं और थक गई हूं।

ग्रब मेरे ग्राराम करने का वक़्त ग्रा गया है। ग्रौर ग्रब मुझ से कुछ होता भी नहीं – तुम्हें याद है न, जब तुम्हारे ग्रब्बा को शोरबे में बाल पड़ा मिला था! मैं तो शर्म के मारे ज़मीन में गड़ गई।"

"यह ग़ैर मुमकिन है, मां। मेरा जवाब है नहीं – ग्रौर एक बार फिर नहीं!"

उमलात तख़्त पर बैठ गया ग्रौर उसने ग्रपना मुंह ग्रपने दोनों हाथों में छिपा लिया। उसे कुछ ही दिन पहले क्लब की एक शाम याद हो ग्राई। पर्दा खुला ग्रौर ग्रनेक वाद्ययन्त्रों को निपुणतापूर्वक बजाने वाला हिज़री पियानो पर बैठ गया। क्लब के प्रदर्शनों के सूत्रधार कासिम ने (जो ग्रब गांव का नाई बन गया है) प्रोग्राम के ग्रगले भाग की घोषणा की, जो एक गीत था, जिसका शीर्षक था "पहाड़ी झरने के क़रीब।" ऐसा लगा जैसे कहीं दूर से एक मधुर सौम्य स्वर ग्रा रहा है जो धीरे-धीरे पास ग्राने के साथ-साथ ऊंचा होता जा रहा है, ग्रौर फिर एक हलकी प्रतिध्वनि के रूप में वापस ग्रनन्त में समाता जा रहा है। यहीं से नसीबा के सशक्त ग्रौर सधे कंठ ने स्वर को पकड़ लिया ग्रौर उमलात को लगा कि वह किसी स्वच्छ पहाड़ी झरने के उद्गम पर पहुंच गया है...

"परेशान मत हो।" उसकी मां की दबी-दबी, सहमी-सी ग्रावाज़ ने उसके विचारों का सिलसिला तोड़ दिया। "नसीबा भी उतनी ही ख़ुश है, जितने उसके मां-बाप। काफ़ी ग्ररसे से वह तुम्हें चाहती है। तुम्हें याद है न, जब तुमने दौड़ में जीता दुपट्टा उसे भेंट दिया था, तो वह कैसी

मुस्कराई और लजाई थी? तुम्हारे जैसे अच्छे जिघित को तो हर लड़की पसन्द करेगी।"

हसन कमरे में आया। अपनी बीवी और बेटे के चेहरे देखते ही वह समझ गया कि वे क्या बात कर रहे थे।

"लड़के बाहर तुम्हारा इन्तज़ार कर रहे हैं," उसने उमलात से कहा, फिर ज़रा मज़ाक भरे लहजे में बड़बड़ाने लगा: उफ़्फ़! अफ़सोस कि मेरे सबसे अच्छे दिन मेरे पीछे छूट गये। अगर मेरे लड़कपन में नसीबा जैसी कोई लड़की होती, तो मैंने उसे छोड़ और किसी से शादी न की होती। कितनी ख़ूबसूरत है वह!"

"आपने शादी तय की है— आपको ही कोई लड़का भी ढूंढ़ना होगा, जिससे उसकी शादी हो जाये," उठते-उठते उमलात गुर्राया।

"चिल्लाकर मत बोलो। मैं अभी मर नहीं गया हूं, और जब तक मैं ज़िन्दा हूं, इस साक्ल्या में सिर्फ़ एक ही आदमी की आवाज़ बुलन्द हो सकती है—मेरी!"

पहाड़ों में वसन्त कब ख़त्म होता है, यह पता ही नहीं चल पाता। प्रायः ऐन गर्मियों के बीच तक तो उसके समाप्त होने का भान ही नहीं हो पाता और तब तक चेरी तोड़ी जा चुकी होती है, खूबानियां पकने लगती हैं और हर जगह चारा सुखाया जाने लगता है—सच पूछो, तो ज़िन्दगी इन दिनों सर्वाधिक व्यस्त रहती है। गर्मियों में भी हवा में धूल का नाम तक नहीं होता, बल्कि, जैसा कि हमारे यहां कहा जाता है, आप कटी हुई घास और देर खिलने वाले फूलों की गन्ध की तेज़ "मदिरा" में सांस लेते हैं। और दोपहर

में तो ऐसा लगता है जैसे सारे समय कोई वाद्यवृंद बज रहा हो, जिसमें चिड़ियों और झींगुरों की आवाज़ के साथ मनुष्यों और मशीनों की आवाज़ें भी घुली-मिली हैं। शाम आती है, तो पहाड़ों से आने वाले प्रकाश और ऊष्मा के प्रवाह में बाधा आ जाती है और दर्रों और घाटियों से ताज़े और शीतल अन्धकार की बाढ़ का अदृष्ट जल उमड़ने लगता है। पहाड़ों की चोटियां लाल-पीले प्रकाश के कारण बुझते शोलों की तरह चमकने लगती हैं और जल्दी ही चरागाहों, खेतों और जंगलों के बाहरी भागों में गड़रिये और घसियारे अलाव जला कर जगह-जगह अपना आभास देने लगते हैं। नया आलू भूना जा रहा है और टहनियों की तिपाइयों पर टंगे ख़िन्कल शोरबे से भरे बर्तन बुदबुदाते हुए बुला-से रहे होते हैं। हर अलाव के गिर्द कोई कही जा रही कहानी, गाया जाता गीत या चुगुर पर बजाई जा रही कोई मधुर जादूभरी धुन आप सुन सकते हैं।

इसी तरह की एक शाम को गांव के कुछ बड़े-बूढ़े ज़ुल्फ़िक़ार के साक्ल्या पर इकट्ठा हुए। वे एक ऐसी शुभ घड़ी के उपलक्ष्य में वहां एकत्र हुए थे जो घर के किसी तेज़ी से बढ़ रहे बच्चे की वृद्धि को अंकित करने वाली बरामदे के खम्भे पर खिंची खरोंच भर न हो कर ख़ुद घर के ही पत्थर पर खुदी इबारत की तरह अंकित की जाने योग्य थी।

इसी रागरंग के बीच मोटा मुस्तफ़ा आ धमका। अभी-अभी वह मखचकला से लौटा था, जहां वह अपने सामूहिक फ़ार्म की फ़सल बटोरने में मदद के लिए कुछ लॉरियां मांगने गया था। उसे लॉरी तो एक भी नहीं मिली: उपदेश अलबत्ता मिला, जिसका मतलब था "अपनी गाड़ी की मरम्मत

जाड़े में कर लो" – दूसरे शब्दों में, सामूहिक फ़ार्म के एक अच्छे अध्यक्ष को अपने यातायात की समस्याएं समय रहते निबटा लेनी चाहिए। पर यहां वह बोल्शेविक उस्मान से लॉरियां मांगने नहीं आया था – उसे ख़ूब पता था कि उस्मान के पास एक भी फ़ालतू नहीं है कि दे सके। वह किसी निजी काम से ज़ुल्फ़िकार के पास आया था जिसका इतने सारे लोगों के बीच ज़िक्र करने को वह अभी तैयार नहीं था।

"आख़िर माजरा क्या है जो इतने सारे लोग यहां जुटे हुए हैं?" उसने पूछा। अपने भारी-भरकम शरीर को आराम से टिकाकर गद्दे पर पलथी मार कर बैठते हुए उसने राहत की सांस ली। हर मेहमान के सामने एक दस्तरख़ान बिछा था, जिस पर भोज्य पदार्थों की भरी-भरी प्लेटें रखी थीं, पर खाने की अधिकांश चीज़ें टिनों में से ही निकाली गई थीं। अगर मेज़बान विधुर हो और दूकानदार भी, तो और उम्मीद ही क्या की जा सकती है।

"मेरी नन्ही सोनचिरैया अब हमारा घोंसला छोड़ रही है, मुस्तफ़ा। वह विश्व-वि-द्या-लय जा रही है," ज़ुल्फ़िकार ने नाज़ के साथ धीरे-धीरे एक-एक अक्षर पर ज़ोर देते कहा।

"अल्लाह के नूर से!" मुस्तफ़ा ने किसी तरह कहा। "कहां है वह?" उसने चारों ओर नज़र घुमाई और किस-तमान को अपनी सहेलियों के साथ एक कोने में बैठे देखा। "अरे, बिटिया, आओ और मुस्तफ़ा को अपना हाथ तो दो। मेरा दिली मुबारकबाद।"

किस-तमान उसके पास गई, इतना तो वह ज़िन्दगी में कभी नहीं शरमाई थी। आऊल के सबसे प्रतिष्ठित लोग

यहां उसके सम्मान में एकत्र हुए हैं और उसकी ओर आशा और अभिमान के साथ देख रहे हैं! मुस्तफ़ा ने बड़े स्नेह के साथ उससे हाथ मिलाया। दार्घिन की मशहूर गाथा 'दाऊद' में से एक वाक्य उद्धृत करते हुए बड़ी लच्छेदार ज़बान में उसने कहा: "मेरे बहादुर जिघित, मैं इस सुनहरे जाम को तुम्हारे नाम पर पीता हूं।" उसने घूंट भरा और उसके ज़ायके का मज़ा लेते हुए होंठों पर जीभ फेरी, क्योंकि शराब ख़ुश्क और सुवासित थी। गरमागरम गोश्त से भरी तश्तरी अपनी ओर खींचते हुए उसने अपनी बात जारी रखी: "ऐसा लगता है कि जहां कहीं भी मैं जाता हूं दावतें मेरा पीछा नहीं छोड़तीं। किस्मत सभी जगह मेरे पीछे-पीछे ही रहती है। अपनी देह पर चढ़े इस गोश्त का बोझ ढोने से मुझे कभी छुटकारा नहीं मिलेगा।"

"नहीं, मेरे दोस्त," बोल्शेविक उस्मान ने मुस्तफ़ा द्वारा बढ़ाये गये जाम को लेते हुए कहा। "यह तुम हो जो दावतों के पीछे दौड़ते हो। तुम्हारी किस्मत तुम्हारे पीछे-पीछे नहीं घूम रही, तुम ही उसका पीछा कर रहे हो।"

बड़मुच्छा हबीब ठठाकर हंस पड़ा, चरवाहों का मुखिया हसन ठठाकर हंस पड़ा, सब ठठाकर हंस पड़े—सब, कुबड़े मुख़्तार को छोड़ कर। आऊल का मुअज़्ज़िन और क़यामत का नबी रोज़ से कहीं ज़्यादा संजीदा और बदहवास था।

ज़ुल्फ़िकार ने बिरादरी के सबसे दानिशमन्द और बुज़ुर्ग लोगों को ही नहीं बल्कि ऐसे लोगों में भी कुछ को बुलाया था जो अपने वक़्त में इसलिये उसका मज़ाक उड़ाते या उसपर तरस खाते थे कि उसके यहां "दुपट्टे ही दुपट्टे" हैं और "पपाख़ा" एक भी नहीं। लगा, जैसे आज की रात वह उन

सब को इसका जवाब दे रहा हो: लो, जी भर कर देख लो, तानाकशी करने वालो! यह मेरा दुपट्टा तुम्हारे एक दर्ज़न पपाख़ों के बराबर है! ये शब्द अनकहे ही रहे, उनका इशारा तक नहीं किया गया, फिर भी वे हरेक के कान के भीतर तक चले गये। और उस मंडली में ऐसे लोग कम नहीं थे जो मन ही मन कह रहे हों कि ज़ुल्फ़िकार हमेशा ही ठीक था और यह कि कोई भी किस-तमान का पिता होने में गर्व अनुभव करेगा...

मामेद-क़ला (शायद 'मुहम्मद-क़ला' अनु०) रेलवे स्टेशन तक किस-तमान को ले जाने वाली बस रात में छूटी, इसलिये दावत में शामिल लगभग सभी लोग उसे विदा देने के लिये वहां मौजूद थे। इन पर्वतीय प्रदेशों में एक "दुपट्टे" को विदा करने के लिये इतने लोग कभी इकट्ठा नहीं हुए थे और बिना किसी के इस तरह की कोई बात कहे, इसने उन लोगों के ख़िलाफ़ एक प्रदर्शन का रूप ले लिया, जो पुराने रिवाज से बुरी तरह से चिपके हुए थे और एक छोटा सा गुट बना कर अलग-थलग आपस में कानाफसी करते खड़े थे।

अब यह एक अजीब-सी चीज़ है: आप कहेंगे कि कोई भी पहाड़ी बूढ़ी औरत आजकल की कम उम्र औरतों की बजाय पुराने ज़माने के बारे में कहीं अधिक अच्छी तरह जानती होगी। बेशक, क्या ख़ुद उन्होंने उन मूर्खतापूर्ण रीति-रिवाजों को जी भर कर नहीं कोसा है, जिनकी वजह से औरत की ज़िन्दगी एक ग़ुलाम की ज़िन्दगी में तबदील हो जाती थी? और तब भी, अपने बुढ़ापे में क्या इन्होंने ही उन पुरानी परम्पराओं की डटकर हिमायत नहीं की थी, जिनसे

ग्रौरतों का उत्पीड़न जारी रहता? ग्रादमियों का ऐसा रुख़ है, तो मुमकिन है, बात समझ में ग्राये भी – पर इन बूढ़ियों का! इसकी जड़ में क्या है? बेशक, डाह ही होगी – ग्रपनी उन बहनों से डाह, जो उनसे कहीं ग्रधिक सुखी, कहीं ग्रधिक ग्राज़ाद ग्रौर कहीं ग्रधिक भरी-पूरी तथा ऐसी ज़िन्दगी का मज़ा ले रही थीं जो उनके लिये मुमकिन नहीं थी। या फिर इन बूढ़ियों के लिये, ख़ुद ग्रपने लिये भी, साफ़-साफ़ यह मान लेना ग्रसह्य था कि उन्होंने दयनीय ग्रौर ग्रपमानजनक ज़िन्दगी बिताई है, ऐसी ज़िन्दगी, जिसमें न प्रकाश था न प्यार, न उद्देश्य, न ग्राशा; बैल की सी ज़िन्दगी। ग्रौर इसलिये, इस ग्रात्मग्लानि की यन्त्रणा से बचने के लिये वे उन पुरानी रस्मों की स्तुति करते हुए, जिनसे उन्हें दुख के सिवाय ग्रौर कुछ नहीं मिला, ग्रपने ग्राख़िरी दिन गुज़ार रही हैं।

खीस निपोर कर कानाफूसी करती बूढ़ियों को देखते हुए किस-तमान के दिमाग़ में इसी तरह के ख़याल चक्कर काट रहे थे।

उसकी बड़ी तबीयत हो रही थी कि वह उनके पास जाये ग्रौर उनसे बहस करे ग्रौर ग्रपने हमेशा के दो टूक लहजे में उन्हें तफ़सील के साथ बातें समझाये। वह ग्रब भी इतनी भोली थी कि उसे विश्वास था कि हर किसी को तर्क से समझाया जा सकता है कि मनुष्य बैल नहीं होता; उसे ग्रभी यह समझना बाक़ी था कि जो लोग न समझने पर तुले हों, वे बैल से भी बढ़कर मूर्ख होते हैं। पर तभी बस की ग्रागे की बड़ी बत्तियां जल उठीं ग्रौर वह लम्बी सड़क वहां तक प्रकाशमान हो उठी जहां से वह एक पुल के पार निकलती थी।

सामूहिक फ़ार्म के गोदाम के आगे वाली चढ़ाई पर चढ़ कर बस तेज़ी से उतराई की ओर बढ़ चली और कुछ देर में उसकी पीछे की रंगीन बत्तियां आंखों से ओझल हो गईं।

इस यात्रा पर किस-तमान को विदा करने आये लोगों का ज़ुल्फ़िकार ने शुक्रिया अदा किया और अपने पुराने दोस्त मुस्तफ़ा के साथ घर की ओर चल दिया। उसका दिमाग़ अब भी अपनी सबसे छोटी और प्यारी लड़की की जुदाई के ख़यालों से भरा था, जो अपना घर छोड़कर जानेवाली अपनी बहनों की अन्तिम कड़ी थी।

इसी रास्ते पर चलते-चलते मुस्तफ़ा ने उस बात का ज़िक्र छोड़ा, जिसकी वजह से वह आज उर्कुख़ आया था—अपनी लड़की सकीनत से हसन के लड़के उमलात की शादी की बात। उसके पुराने और अज़ीज़ दोस्त ज़ुल्फ़िकार की क्या सलाह है? क्या उसकी सकीनत हज़ारों में एक नहीं है और क्या उसके सामूहिक फ़ार्म को उमलात जैसे अव्वल दर्जे के मक्का उगाने वाले की ज़रूरत, और बुरी तरह से ज़रूरत नहीं है? क्या हसन को इस रिश्ते में कोई एतराज़ है?

मुस्तफ़ा को जब पता चला कि उमलात की बात पहले ही नसीबा से पक्की हो चुकी है और इस होने वाली शादी के बारे में लोगों में ज़िक्र भी हो चुका है, तो वह खीझ के मारे झुंझला उठा। ज़ुल्फ़िकार के साक्ल्या में बिछे बिस्तर पर सोने से उसने इनकार कर दिया और बरामदे में ही पड़ रहा, जहां बड़ी सुखद ठंडक थी और जहां वह दूर के पहाड़ी चश्मे की हलकी-हलकी गूंज सुन सकता था। पर उदास मुस्तफ़ा को यहां भी नींद नहीं आई और सुबह की पहली झलक मिलते ही वह अपने घर की ओर चल दिया।

यह घर आना कुछ अच्छा नहीं लग रहा था। अव्वल तो वह अपने पुराने हमजोली हसन को शैतान की बांहों में झोंकने में और उसे खूसट गधा तक बनाने में लगा हुआ था। फिर उसका ग़ुस्सा सकीनत पर उतर आया। वह खिन्न मन अपनी खिड़की से पहाड़ के किनारे पर बने सामूहिक फ़ार्म के सूअरख़ाने की सफ़ेद दीवारों की ओर देख रहा था कि वह कमरे में आई। उसकी ओर घूम कर वह बोला :

"मेरी लड़की है कि खच्चरी? कैसा अच्छा काम करने वाला सामूहिक फ़ार्म के हाथ से निकल गया, मैंने कैसा अच्छा दामाद खो दिया! और यह सब तुम्हारी ग़लती से... मगर अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है। उसे दो-चार सतरें मुहब्बत की लिखो और वह अब भी हमारा हो जायेगा। और यह मुझसे मत पूछो कि क्या लिखना होगा—तुम्हें इस तरह की चीज़ें सिखाना मेरा काम नहीं है।"

"मैं पहले ही एक मुहब्बतनामा लिख चुकी हूं," आंखों में शरारत भरे सकीनत बोली।

"क्या?.. क्या सचमुच?" लगा, जैसे मुस्तफ़ा की मोटी थुलथुल देह कुछ और फूल गई है। "क्या मैं हमेशा यही नहीं कहा करता था कि मेरी सकीनत ख़ज़ाना है?"

"बस फ़र्क़ इतना है कि उसको पाने वाला उमलात न होकर सुलेमान होगा।"

"लाहौलविलाकूवत! वैसा ही है जैसा मैं हमेशा कहा करता था कि मेरे लड़की नहीं खच्चरी है, एक फूहड़, ज़िद्दी, बेवकूफ़ खच्चरी। और यह सुलेमान है क्या?— सर्कस का जोकर और झगड़ालू आदमी। फिर, वह अभी फ़ौज में ही है।"

"पर फ़ौज में तेज़ी से कमी की जा रही है, इसलिये वह किसी दम वापस आ सकता है। आप उसे चाहे जो कहें, मगर मेरे लिये वह हज़ार उमलातों से बढ़ कर है।"

"वाहियात! सारे इलाक़े में उमलात जैसा कोई नहीं है..."

"मेरे लिये तो सारी दुनिया में सुलेमान जैसा कोई नहीं है," सकीनत ने बात काटी।

"या अल्लाह, इस नालायक़ लड़की की बात तो सुनो—अपने बाप से किस तरह ज़बानदराज़ी कर रही है! देखते हैं इस सुलेमान को शादी में कौन कन्यादान करता है।"

"मैं ख़ुद सब इन्तज़ाम कर लूंगी।" सकीनत ने आईने में देखकर अपने को संवारा और अपने लम्बे बालों की चोटी करने लगी। "लोग कहते हैं कि मैं ख़ूबसूरत हूं—आपका क्या ख़याल है, अब्बाजान?"

"किसने कहा यह तुमसे?"

"सुलेमान ने!"

"हुंह! ख़ूबसूरती अपने मां-बाप से मिलती है, इसलिये उसपर इतराने का किसी को कोई हक़ नहीं। अपने काम पर नाज़ करो। फल उगाने वाली टोली में तुम कितना अच्छा काम करती हो, यह दिखाओ, और तब..." मुस्तफ़ा ने अपने मन में कहा कि पढ़ाई-लिखाई का धंधा मेरी बेटी के बस का नहीं। पहले उसे उम्मीद थी कि वह किसी उच्च शिक्षा-संस्थान में भरती होकर कृषिशास्त्री बन जायेगी, पर बाद में उसने देखा कि ऐसा नहीं होनेवाला। और शायद वह आगे पढ़ना चाहती भी नहीं, क्योंकि वह सुलेमान से शादी करने को अधीर है। और क्या यह कोई बहुत ग़लत बात है?

पर मुस्तफ़ा ने ये विचार अपने मन में ही रखे।

"याद रहे, अब्बा, बन्दर रात भर में ही आदमी नहीं बन गया। चलिये, देखें, अगले साल की फ़सल कैसी होती है। मुझे सब से पिछड़ी टोली में डाल दीजिये—बस, ज़रा इन्तज़ार कीजिये और देखिये कि एक साल में ही यह पिछड़ी टोली कहां की कहां पहुंच जाती है। मैं कहती हूं, अब्बा, आप नहीं जानते आपकी लड़की है क्या!"

और इसके साथ ही वह लम्बे-लम्बे डग भरती कमरे से बाहर निकल गई।

'लगन सच्ची है लड़की में,' हर्षमिश्रित अभिमान के साथ, मुस्तफ़ा ने अपने आप से कहा। 'और यह बात उसमें आई कहां से? मुझसे ही तो! भला इस तरह की लड़की पर जिस किसी को दूल्हा बनाकर थोपने की कोशिश तो करो! और मुमकिन है यह सुलेमान भी हूबहू उमलात जैसा ही निकले... जो उसका दिल कहे वही सही—मैं अपनी बात उस पर नहीं लादूंगा!'

मुस्तफ़ा ने छाते जितना बड़ा सफ़ेद नमदे का टोप उठाया। टोप को आगे, आंखों पर झुकाते हुए वह लॉरियों के बारे में बुरी ख़बर सुनाने और साथ ही साथ काम करने वालों को कुछ उत्साहित करने वाली बातें कहने की नीयत से खेतों की ओर चल पड़ा। मन ही मन उसने सोच लिया था कि क्या कहना है: "और लॉरियां नहीं मिलेंगी इसलिये जो हमारे पास हैं, उन्हीं से काम निकालना पड़ेगा। लॉरियां थोड़ी हैं मगर हम काफ़ी हैं, और हममें कामचोर भी कोई नहीं हैं हममें से हर एक दूसरों के पांच-पांच के बराबर है। है कोई तुम लोगों में जो इस बात से इनकार करे?.."

उमलात और नसीबा की होनेवाली शादी की ख़बर आख़िरकार जब हिज़री तक पहुंची तो ग़ुस्से और ग़म से भरी एक आह उसके मुंह से बरबस निकल गई... सोचो भला कि उसके सबसे अच्छे दोस्त ने ही उसकी पीठ में छुरा भोंका, एक ऐसे दोस्त ने, जिसे उसने अपने दिल का सबसे पोशीदा राज़ बताया था! इस दोस्ती और अपनी शराफ़त भरी बेवकूफ़ी और दूसरों पर झट से एतबार कर लेने की आदत को कोसते हुए उसका ख़ून खौलने लगा। जब ये विचार उसे अन्दर ही अन्दर ख़ूब तेज़ जल रही भट्ठी की तरह जला रहे थे, तब उसे उमलात की कोई अच्छी बात याद नहीं आ रही थी। इन सभी भावनाओं को उसने अपने अन्तस्तल में बंद कर दिया था, पर उसके चेहरे से उसका क्रोध और दुख प्रकट हो जाता था और उसने लोगों से किनाराकशी शुरू कर दी जैसे बीमार जानवर छिपने के लिये जंगल या चट्टानों की तरफ़ चला जाता है।

"हमारे पुराने हिज़री को आजकल क्या हो गया है?" लोग उससे पूछते। "तुम्हारी उन मुस्कराहटों, मज़ाकों और कहकहों का क्या हुआ?"

हिज़री इन सवालों का कोई जवाब न देता: वह मौक़ा पाते ही भाग निकलने की ताक में रहता। गांव के बड़े-बूढ़ों की चौपाल (गुमाख़ी) में, सामूहिक बेकरी में और कुंओं पर, जहां औरतें अपनी-अपनी रायें ज़ाहिर करती और गप्पें हांकती हैं, हिज़री के इस परिवर्तन पर लोग चर्चा करने लगे।

उनके पुराने हंसोड़ साथी को क्या हो गया? आख़िर बात क्या है कि यह ख़ुश-ख़ुश रहने वाला लड़का ग़म की चलती-फिरती तस्वीर बन गया है? वह पहले से आधा रह

गया है। और अब जब वे उदास होंगे, तो कौन उन्हें हंसायेगा जब कि सब को हंसाने वाला "हमारा एक्टर" ख़ुद उदास है।

पर कासिम तक जब हिज़री से भेड़ों की खालें पकाने के सामूहिक कार्यक्रम में शामिल होने के लिये कहने को आया, तो उससे कुछ न जान सका।

हिज़री उन सब जगहों से बचने लगा, जहां उसे उमलात के मिलने की सम्भावना होती। उसे अपने पर एतबार नहीं था कि वह अपने ग़ुस्से पर क़ाबू पा सकेगा। भूल से भी जो कहीं आमने-सामने हो गये तो उसका अपने को रोक रखने का सारा इरादा कच्चे घड़े-सा फूट जायेगा। पर उर्कुख़ जैसे आऊल में ऐसी भेंट से बच पाना मुश्किल ही था। ख़ास तौर से जब उमलात ख़ुद उससे मिलना चाहता था, यद्यपि उसने यह ज़ाहिर नहीं किया।

आख़िरकार वे मिल ही गये।

वे पत्थर की सिलों से पटी एक ऐसी संकरी, ढलुआं पगडंडी पर मिले, जहां इतनी जगह भी नहीं थी कि दो आदमी एक साथ गुज़र सकें। वे आमने-सामने खड़े हो गये। पहले उमलात ही बोला।

"हमें इस बात को साफ़ कर लेना चाहिये," उमलात ने एक क़दम आगे बढ़ाया। "मुझसे किनाराकशी क्यों, मेरे दोस्त?"

"दोस्त?" विद्रूप भरी हंसी हंसता हिज़री बोला। "ऐसा न हो कि ऐसे दोस्त के साथ एक ही छत के नीचे रहना पड़े! तुमने जो किया है वह मैं ज़िन्दगी भर नहीं भूलूंगा... और वह रीता के लिये जो तुम्हारी मुहब्बत थी,

वह कहां गई? सोचने की बात है कि मैं भी कितना बेवकूफ़ था कि ऐसे क़ाबिले-मिसाल, प्रगतिशील कामगार उमलात पर मैंने अख़बार में लिखा था! इस सब के बाद दोस्ती रह कहां जाती है?" जैसे जैसे गुस्सा बढ़ता गया हिज़री की आवाज़ ऊंची होती गई पर उसके हाथ – मुट्ठी कसे हाथ – जेब में ही रहे।

"रीता? मगर वह है कहां?" उमलात की आवाज़ में तेज़ दर्द भरा हुआ था।

हिज़री उमलात की ओर हैरत से देखने लगा। क्या वह सफ़ाई देने कोशिश कर रहा है? मगर यह बहाना भी कैसा? उमलात भी परेशान था और कहने के लिये उपयुक्त शब्द ढूंढ़ने में व्यग्र था। रास्ते के किनारे की एक झाड़ी से टहनी तोड़ता वह बोला:

"हिज़री, वह मेरी ज़िन्दगी से ओझल हो गई है।"

"और उसे ढूंढ़ने के लिये तुमने कुछ किया?" हिज़री मुड़कर जाने लगा।

"हिज़री! .. रुको भी, हिज़री!"

उमलात उसके पीछे तेज़ी से बढ़ा, मगर हिज़री आगे जाकर मुड़ गया था और दिखाई नहीं दिया।

और इस तरह, उमलात ने सोचा, मैंने एक दोस्त खो दिया। हिज़री, अगर उसे तुमसे मुहब्बत होती तो मैं तुम्हारे बीच क़तई-क़तई न आता। पर तुमने ख़ुद कहा है कि उसने कभी तुम्हारी मौजूदगी पर ध्यान तक नहीं दिया। और अगर वह तुम्हारी तरफ़ ध्यान नहीं देना चाहती, तो मुझसे क्यों ख़फ़ा होते हो? यह तो सिर्फ़ पहाड़ी हिरनों का क़ानून है कि "अगर मेरा दिल किसी पर चला जाये तो

कोई और उसके पास नहीं फटके—अगर तुम ऐसा करते हो तो लड़ाई होगी, मरो या मार डालो"। मगर हिज़्री, तुम और मैं तो कोई हिरन हैं नहीं। और नसीबा ने तुम्हारी बजाय मुझे पसन्द किया है... क्या वह ख़ुद शादी के लिये राज़ी नहीं हुई?

इस घटना के बाद तो हिज़्री आऊल में और भी कम दिखाई पड़ने लगा। कोम्सोमोल के प्रतिनिधि के रूप में वह चरवाहों के कैम्पों जाकर भाषण देने, पठन-पाठन या वाद-विवाद आयोजित करने के हर मौक़े का इस्तेमाल करता था। उसे आशा थी कि इस प्रकार अपने को काम में लीन होने से उसे अपना दुख भूलने में मदद मिलेगी। पर यह दुराशा मात्र थी।

हम लोगों की तरफ़ शादी की धूमधाम आम तौर पर तीन दिन तक चलती है। पहले दूल्हे के घर "दूल्हे की शादी" की रस्म मनाई जाती है, फिर "दुल्हन की शादी" की रस्म दुल्हन के घर होती है, और फिर गांव के चौक में सार्वजनिक रूप से उत्सव मनाया जाता है, जहां से दुल्हन, सब की निगाहों के सामने, दूल्हे के घर जाती है, जो अब ज़िन्दगी भर के लिये उसका घर होगा। दूल्हा अगर दुल्हन के ही घर रहने लगे तो इसे अच्छा नहीं समझा जाता, क्योंकि आऊल की बड़ी-बूढ़ियां पुराने ज़माने से यह कहती आई हैं कि "ऐसा लड़का पैदा ही न हो, जिसे घर जमाई बनना पड़े, क्योंकि वहां वह अपने दिन औरत की जूती तले गुज़ारेगा"। पर उर्कुख़ में ऐसे भी मर्द थे जो अपनी बीवी के साक्ल्या में रहने लगे थे और जिन्होंने अपनी मर्दानगी के

पपाख़ा पर ज़रा भी ग्रांच ग्राये दिये बिना मुहब्बत ग्रौर मेलजोल के साथ ग्रपनी उम्र गुज़ार दी थी – ग्रौर फिर भी उनकी शामत नहीं ग्राई। इसके विपरीत ऐसे मामलों में ग्रौरतें ग्रपने मर्दों को ग्रौर भी ग्रधिक प्यार करती थीं, क्योंकि उनके मर्दों ने उन घिसे-पिटे रिवाजों की चुनौती स्वीकार कर ग्रपनी मर्दानगी का सबूत दिया था। इन सभी दुर्दम्य ग्रन्धविश्वासों की जड़ उस पुरानी जीवन-पद्धति में थी, जिसमें पैसा ही ग्रादमी को शक्ति ग्रौर ग्रधिकार प्रदान करता था ग्रौर जिसमें घर का मालिक घर में रहनेवाले हर शख़्स पर ग्रपना मनमाना हुक्म चला सकता था। उस पुराने ज़माने में ज़िन्दगी इतनी ख़राब थी कि एक कहावत ही प्रचलित हो गई थी: "किसी भी ग्राऊल में ग्रापको ढूंढ़े से एकाध भिखारी मिल जायेगा, पर उर्कुख़ में तो सभी भिखमंगे हैं..."

यह कहना ग़लत होगा कि पतझड़ में होनेवाली शादी की धूमधाम तीसरे दिन की रात ग्राते-ग्राते ख़त्म हो जाती है। जब बुज़ुर्ग लोग ग्रपने सधे या डगमगाते क़दमों से चौक से जाने लगते हैं, तो वे ग्रपने-ग्रपने घरों को नहीं चल देते। वे ग्रपनी गुमाख़ी (चौपाल) की ग्रोर जाते हैं, जहां वे गप्पें हांकते, फब्तियां कसते या किसी किस्सागो से कहानियां सुनते हुए तमाशे को जारी रखते हैं। ग्रौर ग्रक्सर उनके दिमाग़ में यह विचार ग्राता है: इसी तरह के जमावों में पहले-पहल ग्रलिफ़लैला की कहानियां कही गई होंगी। जहां तक नई पीढ़ी के लोगों की बात है, नवविवाहितों सहित सभी सामूहिक फ़ार्म के सायेदार ख़लिहान में चले जाते हैं, जहां मनोविनोद ग्रौर सामूहिक कार्य साथ-साथ चलते रहते हैं। यहां

मक्का के बीज के लिये छांटे भुट्टों के ढेर लगे होते हैं। हर भुट्टा अखरोट की लकड़ी की बनी मूंठ में रख दिया जाता है और उसपर लकड़ी की मुंगरी से हौले-हौले चोट दी जाती है, जिससे दाने छिटक कर अलग हो जाते हैं। गाते और हंसते जवान जोड़े साथ-साथ अपने काम में जुट जाते हैं, बीच-बीच में नृत्य भी चलता रहता है। यह सिलसिला ऊंट की कूबड़ नाम वाले पहाड़ के ऊपर भोर के तारे के निकलकर आने वाली सुबह की सूचना देने के समय तक रात भर चलता है...

उमलात और नसीबा के मां-बाप ने तय किया था कि शादी ऐसी होगी कि लोग बरसों तक याद करें और कहें कि "हसन के बेटे उमलात की जिस साल शादी हुई थी, उस साल यह-यह हुआ था।"

ढोलों पर थाप पड़ी; ज़ुर्ना मशकबीनों पर आलाप छिड़े; बांसुरियों पर सुरीली तानें उठने लगीं, कूच की एक जोशीली धुन दूर के दर्रों और घाटियों तक गूंजने लगी। और चूंकि यह ख़ास धुन पुराने ज़माने में किसी बड़ी जीत की ख़ुशी में ही बजाई जाती थी, इसलिये बड़े-बूढ़ों ने तो यहां तक कह दिया कि कम से कम वर-वधू के मां-बाप को इस मौक़े की अहमियत के बारे में कोई शक़ नहीं है। दूसरे लोग किस क़ाबिल थे, यह मैं नहीं जानता, पर मक्का की जैसी फ़सलें उमलात पैदा करता था, यह देखते हुए उसे इस प्रकार का सम्मान मिलना उचित ही था। क्या उसने बोल्शेविक उस्मान की मरहूम बीवी, बाख़ू की मशहूर फ़सल को भी मात नहीं दे दी थी?

उस्मान से बाख़ू की पहली मुलाक़ात ख़ुन्ज़ाख़ की

लड़ाई के बाद, अवारिया के बीहड़ सुदूर पहाड़ों पर हुई थी। बाख़ू ने उसमान को धूल भरी घास में बुरी तरह से घायल पड़ा देखा, तो वह उसे सुरक्षित स्थान में ले आई, उसके घावों की मरहम-पट्टी और सेवा-शुश्रूषा कर उसे फिर से भला-चंगा कर दिया। सामूहिकीकरण के प्रारंभिक दिनों में बाख़ू और उसकी टोली ने मक्का की एक मां की तरह देख-भाल की थी और ऐसी फ़सल उगाई थी कि पुराने अन्धविश्वासी अचरज और ग़ुस्से से भर गये।

उसका नाम दूर-दूर तक फैल गया और १९३६ में दाग़िस्तान की सरकार ने उसे सम्मान-पत्र से विभूषित किया। समय के साथ-साथ पीला पड़ा यह सम्मान-पत्र अब भी उस्मान के साक्ल्या में बाख़ू के फ़ोटो के साथ देखा जा सकता है, जिसमें वह और उनका इकलौता लड़का भी है, जो पिछली लड़ाई में मारा गया था।

इसी तरह का एक सम्मान-पत्र दाग़िस्तान की सर्वोच्च सोवियत ने शादी के इस दिन उमलात को भी दिया। इसके शुरू के शब्द हैं: "बाख़ू के उत्तराधिकारी..." और इसलिये क्या आप हसन को शहनाइयां और ढोल बजाने वालों को विजेता के स्वागत की धुन बजाने का हुक्म देने के लिये कुछ कह सकते हैं?

उर्कुख़ में कभी किसी शादी में न इतने लोग इकट्ठे हुए थे, न इतने ज़ोर-शोर से शराब की नदियां बही थीं, और न ही नाचने वालों के लिये कालीनों से इतना लम्बा-चौड़ा चौक ही सजाया गया था। हर चीज़ कसरत से थी, जो ऐसे मशहूर मक्का उगाने वाले की शादी के अवसर के उपयुक्त थी।

सिर्फ़ एक चीज़ की कमी खटक रही थी—आनंदभरी उमंग की।

मेहमानों ने बड़ी कोशिश की कि वे ख़ुश-ख़ुश दिखाई दें, पर कुछ ऐसा लगता था कि वे ज़बर्दस्ती हंस रहे हैं। बड़े-बुज़ुर्ग मेहमानों में एक अजीब सी, दोष की सी भावना घर किये थी। ज़ुल्फ़िकार, जो ऐसे मौक़ों पर तमादा हुआ करता था, किसी 'ज़रूरी काम' से, जिसका ब्योरा मालूम नहीं था, शहर चला गया था। उर्कुख़ का अपना मसख़रा हिज़री भी, जो एक ज़माने में बड़ा ख़ुशदिल दीखता था, ग़ायब था। इसी प्रकार वह दूसरा बातूनी चुहलबाज़ कासिम भी नहीं था। और उस रंगारंग का अर्थ ही क्या, जिसमें मस्ती न हो? दूसरे शब्दों में—जैसी कि एक पहाड़ी कहावत है—शादी की मिठाई में नमक पड़ गया था।

शादी के पहले दिन हसन के साक्ल्या पर शहनाई और ढोल वाले कूच की धुन बजा रहे थे कि तभी डाकिया रशीद दूल्हे से मिलने आया। रशीद नशे में धुत्त था। एक वही था, जिसने हम पहाड़ियों के इस कठोर नियम को तोड़ा था कि छोटों को आऊल के बुज़ुर्गों के सामने नशे की हालत में नहीं दिखाई पड़ना चाहिये।

"उमलात!" धूप से हरे हुए आलू-सी नाक को रगड़ते हुए उसने आंगन से ही ज़ोर से बुलाया। "उमलात, ज़रा बाहर तो आना—बड़ा ज़रूरी काम है!"

यूं उस कमरे से दूल्हे को नहीं जाना चाहिये, जिसमें उसके मेहमान बैठे हों, पर उमलात आंगन में खिसक आया जहां ताज़ी कटी घास और उपलों की मिली-जुली गन्ध फैली थी।

उमलात के चेहरे को, जिस पर ख़ुशी का नामोनिशान नहीं था, संजीदगी से देखता रशीद बोला:

"मुझे तुमसे कुछ बात करनी है – बहुत ही ज़रूरी बात... पर पहले मेरे इस सवाल का जवाब दो – सिर्फ़ एक सवाल का। अगर किसी की वजह से तुम्हारा बुरा हो जाय, तो उसके साथ तुम कैसा सुलूक करोगे?.. मेरा मतलब है दफ़अतन, जान-बूझ कर नहीं।"

"तुम नशे में हो, भाई। बेहतर हो कि घर चले जाओ।"

"मगर रुको तो! ठीक है कि मैं नशे में हूं – बेशक, मैं पिये हूं। मगर पी तो मैंने इसलिये है कि मेरी हिम्मत बंधी रहे। समझे! मुझे पता है कि यहां बड़े-बूढ़े हैं, और कल सबेरे सबसे पहले तुम्हारे अब्बा ही मुझे बुरा-भला कह रहे होंगे – शायद मेरी मां से भी इस बारे में कहें। बहरहाल, कहने दो उन्हें। बात यह है: तुम ऐसे आदमी से कैसा सुलूक करोगे? सिर्फ़ इस एक सवाल का जवाब दो, उमलात। और यह ध्यान रखते हुए कि यह सब भूल से ही हुआ है।"

"यह तो इस बात पर मुनहसिर है कि वह भूल कैसी है।"

"समझ लो, एक ऐसी भूल जो सुधारी जा सके, मेरा ख़याल है... मगर जवाब तो दो: तुम ऐसे आदमी से कैसा सलूक करोगे?"

"मैं उसे माफ़ कर दूंगा।"

"ज़बान देते हो?" कहते हुए रशीद ने हाथ बढ़ाया और उमलात ने उससे अपना हाथ मिलाया। "मैं जानता था!.. अच्छा तो, बात यह है: क्या मर्गारीता नाम की

कोई है, जो तुम्हें ख़त भेज सकती है? क्या इस नाम की किसी को तुम जानते हो?"

उमलात के चेहरे पर नई ज़िन्दगी ग्रा गई। ग्राऊल में किसी को इसका भान नहीं था कि रीता मर्गारीता का ही संक्षिप्त नाम है, क्योंकि पहाड़ों में लोग इस तरह के नामांतर नहीं करते। कोई भी रशीद को "शीदीक" या उमलात को "लतीक" नहीं कहेगा।

"उस लड़की को जानने की बात? बेशक, जानता हूं। क्या हुग्रा उसको? .. जल्दी बोल, भले ग्रादमी! .. क्या कोई बुरी ख़बर है?" उमलात ने नशे में चूर डाकिये को बांह से पकड़कर झकझोर दिया। "बोल न, रशीद, बोल भी!"

"उसे कुछ नहीं हुग्रा।"

"तो फिर, उसके पिता को... क्या उनका इन्तक़ाल हो गया?"

"नहीं, वैसी कोई बात नहीं... बात कुछ यूं है, समझते हो न: तुम जानते हो मेरा भाई फ़ौज से लौट ग्राया है? .. हां, तो कुछ ऐसी बात फैल गई थी कि वह ग्रपने फ़ौजी मुकाम पर एक रूसी बीवी छोड़ ग्राया है। मेरा ख़याल है शायद यह तुमने भी सुना हो? .. ग्रौर, बड़े भाई की शादी से पहले छोटे भाई की शादी हो जाने पर जैसा होहल्ला मचता है, इसका ग्रन्दाज़ तुम लगा सकते हो? – सारे ख़ानदान पर कलंक! हमारे पुरखों की बेइज़्जती ग्रौर बड़े भाई के मुंह पर थूकने जैसा – ग्रौर नहीं तो क्या? इस वजह से मैं ग्रपने भाई से नफ़रत करने लगा। तुम भी यही करते, नहीं क्या? बोलो!"

"अब, रशीद, यार, तुम्हारे भाई के बारे में फिर किसी वक़्त बात करेंगे। तुम रीता के बारे में क्या जानते हो, यह बताओ। और सीधे-सीधे – घुमा-फिरा कर बात कहकर परेशान मत करो।"

"वह रीता नहीं, मर्गारीता है।"

"दोनों एक हैं... ख़ैर, अब अपनी ख़बर सुना दो। कैसी है वह?"

"दोनों एक ही हैं? मगर यह कैसे?"

"अरे बोलो, बोलो भी!"

"बोलता हूं, और बिल्कुल सीधे-सीधे, साफ़ और ब्योरेवार वह सब कहता हूं जो मुझे कहना है, ताकि कहीं तुम ग़लत न समझ बैठो। इन सब बातों में मेरा भाई भी शामिल है... तुम जानते हो मैं डाकिया हूं – मगर बेशक, यह तो तुम जानते ही हो, सभी जानते हैं – और इसलिये मैं अपने भाई के नाम आनेवाले ख़तों पर कड़ी निगाह रखता था। जैसे कोई बाज़ चूज़े पर नज़र रखे – विश्वास करो, ठीक उसी तरह मैं नज़र रखता था। हां, तो एक माह बीत गया, पूरा माह। कुछ नहीं आया। फिर शुरू हुए तो हर डाक से तीन-चार – मेरा मतलब ख़तों से है। अपने भाई से मैं ख़ूब झगड़ चुका था। एक दफ़ा तो हम लोग गुंथ भी गये मगर न जाने किस औरत ने बीच में अपना दुपट्टा डाल दिया। पता नहीं कि इस लड़ाई का कहां अंत होता... अच्छा! अच्छा! ख़तों की बात ही बता रहा हूं... मुहर वाली लाख मुझे पिघलानी होती है – डाक के थैलों को मुझे लाख की मुहर लगाकर बन्द करना पड़ता है – यह तो तुम जानते ही हो – ख़त पर ख़त आते और मैं

उन्हें जलाकर लाख पिघलाने का काम लेता। तुम जानते हो कि तुम्हारी ही तरह मेरे भाई का नाम भी उमलात है और कुलनाम भी एक ही है... ख़ैर, कुछ भी हो, एक ख़त 'सामूहिक फ़ार्म के टोली नायक उमलात हस्सानोव' के नाम आया, और तब मुझे अपनी ग़लती का अहसास हुआ।"

"मेरा ख़त! और रीता के पास से! लाओ, दो मुझे!"

"जैसा कि मैं तुम्हें बताने की कोशिश कर रहा था—तब मुझे इसका अहसास हुआ कि ये ख़त तुम्हारे नाम थे न कि मेरे भाई के नाम... अब, मेरे अज़ीज़ उमलात, तुम समझ रहे हो न? मेरे भाई ने कोई ग़लत काम नहीं किया और मेरे लिये शर्मिन्दा होने की भी बात नहीं है—रत्ती भर नहीं!"

नशे में चूर डाकिया ठहाका मार कर हंस पड़ा। इस ख़ुशगवार नतीजे पर पहुंच कर उसे जो मसर्रत और राहत हासिल हुई, उसे वह अपने तक नहीं रख पाया। मगर ग़ुस्से से धधकते उमलात ने उसे कॉलर पकड़कर जो झटका, तो उसकी सारी हंसी झड़ गई।

"लुच्चे कहीं के! अपनी गंदी लाख पिघलाने के लिये तूने मेरी माशूक़ा के ख़तों का इस्तेमाल किया!" ग़ुस्से में उफनता उमलात सोच रहा था कि काश उसे ये ख़त मिल गये होते तो क्या यह बेवकूफ़ी भरी शादी हो पाती। "जेल भी तेरे लिये नाकाफ़ी होगी—तुझे तो गोली से उड़ा दिया जाना चाहिये।"

"उमलात!.. उमलात!.. मुझे छोड़ दो! देखो तुमने मुझसे वादा किया था.. ओफ़्फ़ोह, उमलात, देखो

मेरी कमीज़ फट रही है– और वह भी बिल्कुल नई कमीज़, जो ख़ास तौर से तुम्हारी शादी के मौक़े पर पहनी है... याद करो, तुमने वादा किया था।"

"अच्छी बात है। माफ़ किया तुम्हें।" हांफते रशीद को उमलात ने छोड़ दिया। "मगर वह आख़िरी ख़त तो मेरे हवाले करो।"

"है कहां मेरे पास।"

"क्या मतलब, तुमने उससे भी लाख पिघला डाली? यह तो हद हो गई! तुम यह कैसे सोचते हो कि मैं तुम्हें माफ़ कर दूंगा?"

"तुम पागल तो नहीं हो गये हो? मैं तो यही कह रहा हूं कि वह मेरे पास यहां नहीं है। मैं उसे घर ही छोड़ आया। मैंने मन ही मन सोचा कि जब तुम्हारे मर्दाने हाथों में जल्दी ही नसीबा जैसी फुदकती नन्ही चिड़िया आने वाली है, तो तुम इस मर्गारीता का ख़त लेकर क्या करोगे?"

"बकवास बन्द करो अपनी! चलो। वह ख़त मुझे दो।" रशीद की बांह पकड़ उमलात उसे फाटक की ओर घसीट ले चला। और नहीं तो क्या, इतना एक आदमी को पागल बना देने को काफ़ी था। उसकी वफ़ादार माशूक़ा रीता उसे हर डाक से ख़त भेजती रही, जब कि वह ऐसा गोबरगणेश निकला कि... मेहमानों वाले कमरे के खुले दरवाज़े से आती आवाज़ों से उसके विचारों की कड़ी टूट गई। चुगार बज रहा था और मदिरालस आवाज़ में कोई गा रहा था:

जाम भरिये, जाम खनखनाइये
'मेज़बान सुखी रहे!' कहकर मुंह लगाइये!

"तुम भी कैसे दूल्हा हो?" अपनी कमीज़ की सलवटें ठीक करते हुए रशीद ने शिकायत भरे लहजे में कहा। "अपने दस्तरख़ान से मुझे इस तरह धकेले लिये जा रहे हो—ऐसा भी कोई करता है!"

"फ़िक्र मत करो, तुम्हारे हिस्से का तुम्हें बाद में मिल जायेगा।"

"वो जो कहा करते हैं सो कुछ ग़लत नहीं लगता कि: 'होशियार को तो खलिहान में भी शादी की दावत मिल जाती है, पर गधे को शादी की दावत में भी पीठ पर बोझ ही ढोने को मिलता है।'" फाटक से निकलते-निकलते मेहमानों वाले कमरे की ओर लालच भरी आख़िरी नज़र फेंकते हुए डाकिये ने आह भरी।

जब वे उसके घर पहुंचे तो रशीद ने उमलात को एक अधजला ख़त दिया और कहा: "तुम चाहे जो कहो, पर यह जान कर मेरे ऊपर से एक बहुत बड़ा बोझ हट गया कि मेरे भाई ने किसी रूसी लड़की से शादी नहीं की और यह कि वह तो तुम्हारी ही दोस्त है।"

उमलात कुछ नहीं सुन रहा था। ऐसा लगा कि उसे फिर उक़ाब के वे पर लग गये हैं, जो उसे सुर्ख़ाई और ज़ैनब की शादी के नाच में उड़ा रहे थे। बिना कुछ कहे वह सर्राटे से भाग चला।

इसके बाद उमलात को उर्कुख़ में किसी ने नहीं देखा। और जहां तक रशीद की बात है, अपना मुंह बन्द रखने की उसकी अपनी वजहें थीं। वह इस घटना का जिक्र कर फिर से सारे ज़िले में अपना मज़ाक नहीं उड़वाना चाहता था।

फिर उसका डाकख़ाने वाला काम भी अच्छा और सुभीते का था और वह उसे छोड़ना नहीं चाहता था।

ज़ुल्फ़िकार जब अगले दिन उर्कुख़ लौटा, तो उसने बताया कि उसने उमलात को शहर में देखा था। यह बात जब हसन तक पहुंची तो उसने अपनी बीवी को अकेले में ले जाकर कहा: "क्या करना होगा? .. जब तक वह वापस नहीं आ जाता तब तक क्यों न हम चुप रहें और इन्तज़ार करें?"

"मगर आख़िर वह शहर गया क्यों?" ज़ाज़ा ने बेताबी से पूछा। "और ऐसी क्या बात आ पड़ी कि वह बिना किसी से एक लफ़्ज़ कहे निकल भागा?"

"लोगों ने बढ़ाई कर-करके उसका दिमाग़ चढ़ा दिया है," हसन बड़बड़ाया। "बार बार मैं कोम्सोमोल, पार्टी और उस्मान को भी ताक़ीद करता रहा हूं कि वे सराह-सराहकर लड़के को ख़राब कर रहे हैं। इससे हुआ यह कि उसने अपने मां-बाप की हुक्म-उदूली करना शुरू किया और क्या! अब लोग कहेंगे कि ऐसी शादी कभी नहीं देखी— बिना दूल्हे की शादी।"

"पुराने क़ायदे नहीं बदलने चाहिये," ज़ाज़ा ने ज़ोर देते हुए कहा। "अगर दुल्हन वापस चली गई, तो उसके मां-बाप सगाई तोड़ देंगे और यह बड़ी बदनामी की बात होगी। मैं सबसे यही कहूंगी कि उमलात दुल्हन के लिये एक ख़ास तोहफ़ा लेने गया है... और अगर उसे बहू की ज़रूरत नहीं है, तो मुझे तो है। इस उमर में मुझे कुछ तो सहारा मिलना ही चाहिये।"

हसन कुछ नहीं बोला। बुढ़िया को अपने हिसाब से करने दो – और फिर, है भी तो यह औरतों का ही मामला।

और इस तरह नसीबा लापता दूल्हे के घर लाई गई। सारे आऊलों में लोग होनेवाली दुल्हन के बारे में, जिसका दूल्हा पंछी की तरह फुर्र हो गया था, तरह-तरह की बातें करने लगे। ज़रूर इस सब के पीछे कोई गहरा राज़ होगा, वरना कोई आदमी ऐसा काम करेगा ही क्यों? किसी-किसी ने कहा कि ज़ाज़ा ने यह शादी बस आड़ के लिये की है, जिससे उसे घर के कामकाज के लिये एक जोड़ा मज़बूत और जवान हाथ मिल जायें।

इस बीच उमलात बाहर ही रहा, ज़िला-केन्द्र में भी उसका कोई सुराग़ नहीं मिला।

पहाड़ी सामूहिक फ़ार्मों के गड़रिये आम तौर पर जाड़ा अपने रेवड़ों के साथ ही उत्तरी दाग़िस्तान के किज़लर स्तेपी के चरागाहों में बिताते हैं। कास्पियन सागर के किनारे के ये उपजाऊ समशीतोष्ण प्रदेश शिकारियों के लिये स्वर्ग हैं। ठंड आम तौर पर बिल्कुल हलकी पड़ती है और खारे दलदलों और झीलों पर तथा घने सरकण्डों में शिकार भी कसरत से मिलते हैं।

पर कभी-कभी जाड़ा मनमानी भी कर बैठता है और भारी हिमपात और कभी-कभी बर्फ़ीले तूफ़ान भी आ जाते हैं। और इस बार का जाड़ा भी ऐसा ही था। मुस्तक़िल तौर से स्तेपी में ही रहनेवाले नोगाई लोगों ने जानकारों की तरह सिर हिलाते हुए कहा कि पिछले पूरे बीस बरसों में ऐसा कभी नहीं हुआ था। ऐसे मौक़ों के लिये ही स्तेपी में

जगह-जगह चारे के ढेर लगा दिये गये थे, मगर वन्य जन्तु-संरक्षण क़ानून के कारण इधर कुरंगों की तरह के सैगक हिरणों की बाढ़ आ गई थी और खाने की तलाश में वे सामूहिक फ़ार्मों के चारे के ढेरों पर धावा मारते जाते थे और उन्हें उजाड़ कर चले जाते थे। इसलिये पहाड़ी गड़रियों का काम दुगुना हो गया: दिन में वे अपने लम्बे-चौड़े बाड़े में भेड़ों की देखभाल किया करते और रात में खुले स्तेपी में रखे भूसे की रखवाली के लिये गहरी बर्फ़ में चक्कर काटते। जब चारे की कमी ख़तरनाक हालत तक पहुंच जाती, तो भूसे की गांठें हेलिकॉप्टरों से गिराई जातीं और पशु भी भोजन की इस परिवहन-व्यवस्था के इतने अभ्यस्त हो गये थे कि उनके इंजनों की आवाज़ सुनते ही वे आशा भरी नज़रों से आकाश की ओर देखने लगते थे।

सख़्त शीत लहर के बाद ही बर्फ़ पिघलनी शुरू हो गई और ज़मीन पर जगह-जगह बर्फ़हीन धब्बे नजर आने लगे। गड़रियों का हौसला बढ़ने लगा और उन्होंने लगातार फैले इन धब्बों में चरने के लिये भेड़ों को घेरे से बाहर हांक दिया। पर उन्हें बहुत दूर-दूर तक जाना पड़ता था क्योंकि घेरे के पास की जगहों की घास तो जल्दी ही भेड़ों और सैगकों की वजह से साफ़ हो गई थी।

मौसम फिर बदला और इस बार पहले से भी बुरा हाल हुआ। दोपहर में आकाश बादलों से घिर गया और रात होते-होते बर्फ़ीला तूफ़ान आ गया। सुर्ख़ाई और झामाव को छोड़कर सभी के रेवड़ अपने घेरों में सही सलामत वापस आ गये थे। गड़रियों के मुखिया हबीब ने सुबह ज़्यादा दूर जाने से मना किया था, मगर सुर्ख़ाई भेड़ों के इतने दिन

घेरे में बन्द रहने के बाद उन्हें ज़्यादा से ज़्यादा चरने देना चाहता था। वे तूफ़ान में फंस गये। चक्कर खाती घनी बर्फ़ के मारे उन्हें कुछ नहीं सूझ रहा था और भेड़ों की पीठों पर बर्फ़ के गालों की तहें जमती जा रही थीं। सुर्ख़ाई रेवड़ को एक बाहर निकली हुई चट्टान के तले हांकना चाहता था, मगर झामाव इतना डर गया था कि मददगार के तौर पर बेकार हो गया था।

इस माने में झामाव एक अच्छा गड़रिया था कि वह कभी ही कोई ऐसा काम करता था, जो सरीहन ग़लत हो— जैसे फ़ातिमा के लिये वह एक अच्छा शौहर था, इस माने में कि अपनी जानकारी में उसने उस पर कभी कोई ज़्यादती नहीं की। लड़कपन में वह क़ायदे से स्कूल गया, मन लगा कर पढ़ा और कभी उसके ख़िलाफ़ कोई शिकायत नहीं रही, पर कभी वह यार-दोस्तों की टोली में भी नहीं दिखा— वह बड़ा हुआ तो ख़ुद के लिये और ख़ुद-ब-ख़ुद। यह कोई नहीं कह सकता था कि वह झगड़ालू है; न कोई यही कह सकता था कि कमज़ोर लड़के को बचाने या मारने वाले को रोकने के लिये भी वह किसी लड़ाई-झगड़े के बीच ही पड़ा। कोम्सोमोल में वह नहीं गया, क्योंकि इससे कुछ फ़ाज़िल ज़िम्मेदारियां उसके सर आ जातीं और उसे बिना दौड़-धूप वाली सीधी-सादी ज़िन्दगी पसन्द थी। तरुणाई के नैसर्गिक उल्लास ने जल्दी ही उसका साथ छोड़ दिया और, जैसी कि कहावत है, वह लगातार ऐसा होता गया जैसा "न जलाया गया कुबाची लैम्प— जो होता तो औरों जैसा ही है, हां, फ़र्क़ बस यह होता है कि रोशनी नहीं देता।"

"हमें यह वक़्त यहीं काटना होगा," सुर्ख़ाई ने झामाव से कहा। "भेड़ें उस पहाड़ पर नहीं चढ़ पायेंगी।"

झामाव ने कोई जवाब नहीं दिया। वह ठंडी, तीर-सी चुभती हवा में, जिसके कारण बर्फ़ के गाले उन्हें गोलियों की तरह लग रहे थे, खड़ा कांप रहा था। "तुम भले यहीं रहो," वह सोच रहा था, "मगर मेरी जान मेरे लिये भेड़ों के रेवड़ से कहीं ज़्यादा क़ीमती है। मैं नहीं रुकनेवाला। जल्दी ही रात हो जायेगी और तब उनकी खोज-ख़बर लेने कौन आयेगा? यहीं रुक जाओ और बर्फ़ में जमकर मर जाओ या भेड़ियों के मुंह में जाओ! – न, मैं ऐसा नहीं करने का।"

"हिम्मत से काम लो, झामाव," सुर्ख़ाई कह रहा था। "देर नहीं लगेगी उन्हें हमें ढूंढ़ते। भेड़ों का रेवड़ कोई भूसे में गिरी सुई थोड़े ही है।" शायद झामाव को इसका एतबार हो जाय, सुर्ख़ाई ने सोचा, मगर वह जानता था कि यह एक दुराशा मात्र है। फिर भी, वे दो तो थे – और एक कुत्ता – और यह बर्फ़ीला तूफ़ान क्या रात भर रहेगा?

सुर्ख़ाई सिगरेट वग़ैरह नहीं पीता था, पर उसने बड़े-बूढ़ों को कहते सुना था कि सिगरेट का एक गहरा कश उदासी दूर करने में मदद देता है, इसलिये झामाव से उसने थोड़ी सी मख़ोर्का (तंबाकू) मांगी और अपने लिये एक सिगरेट बनाई। एक ही कश में वह खांसने लगा और उसने सिगरेट तूफ़ान के हवाले कर दी।

"झामाव, तुम यहीं रुको और मैं भेड़ों के झुण्ड के दूसरी तरफ़ चला जाता हूं। कोई बात हो तो ज़ोर से आवाज़ दे देना।"

सुर्ख़ाई गहरी बर्फ़ में गिरता-पड़ता बड़ी मेहनत से बढ़ चला। दूसरी ओर पहुंच कर उसने देखा कि हर भेड़ पास वाली भेड़ की बग़ल में अपना सिर घुसेड़े एक दूसरे से सटी बैठी

हैं। दयनीय, निरीह प्राणी, उसने सोचा। कितना मन था उसका कि वह उन्हें अपने लम्बे-चौडे बर्के में समेट ले।

उनका शिकारी का कुत्ता, कोत्सी, झामाव के ही पास रह गया था, जो भेड़ों की ओर पीठ किये एकटक उस ओर देख रहा था जिधर, उसके ख़याल से, ख़ेमा होना चाहिये था। कुत्ता उसी को देखता रहा मानो उसके विचार पढ़ने की कोशिश में हो।

मुझे यहां से निकल ही जाना चाहिये, झामाव ने अपने मन में कहा। हम बाईं ओर काफ़ी आगे निकल आये हैं और इस हिसाब से मैं ख़ेमे में सही-सलामत पहुंच जाऊंगा। हां, मैं ख़ेमे में तो वापस सही-सलामत पहुंच जाऊंगा, मगर अकेले – और तब इसका क्या जवाब दूंगा? फिर भी, सुबह तक कोई मुझसे कुछ नहीं पूछेगा – तब तक उन्हें कुछ पता ही नहीं चलेगा... मैं कह दूंगा कि मैं मदद की तलाश में निकल गया था।

घुटने-घुटने गहरी बर्फ़ में किसी तरह गिरता-पड़ता झामाव आगे चल दिया। कुत्ते ने उसे देखा ज़रूर, मगर अपनी जगह से हिला नहीं। झामाव कुछ ही क़दम गया होगा कि हवा के साथ आती सुर्ख़ाई की आवाज़ उसके कानों में पड़ी।

"झामाव! अच्छा हो थोड़ी आग जला लें!"

"काहे से?" झामाव ने चिल्लाकर जवाब दिया। फिर वह दौड़ पड़ा। कुत्ता भी उसके पीछे-पीछे हो लिया।

कुछ दूर जा चुकने पर झामाव जो पीछे घूमा, तो उसने देखा कि पीछे-पीछे एक काली-सी चीज़ चली आ रही है। भेड़िया! उसने सोचा। हांफते और गिरते-पड़ते वह जान

लेकर भागा। जानवर लगातार उसके नजदीक आता गया। एक रोएंदार थूथन का स्पर्श पाते ही वह डर के मारे चिल्लाया और उलटा हो गया। अपनी कटार तक के बारे में वह भूल गया। पहाड़ी कहावत के मुताबिक़ डर ने उसकी लड़ने की ताक़त को मार दिया था। तभी उसे जानवर की छाती में एक सफ़ेद दाग़ दिखाई दिया और उसने कोत्सी को पहचान लिया।

झामाव चाहे ख़ुद दोस्त को छोड़कर चला जाये, पर कुत्ते को भी साथ ले जाये यह उसके नैतिक आचरण के भी ख़िलाफ़ था। उसने एक तेज़ घुड़की भरा हुक्म कोत्सी को दिया और कुत्ता वापस रेवड़ की ओर चल दिया...

"झामाव!"

सुर्ख़ाई के दिमाग़ में भी यह बात नहीं आई थी कि कोई गड़रिया अपने साथी और रेवड़ को छोड़कर जा सकता है।

"झामाव!"

एक बार फिर सुर्ख़ाई की आवाज़ का कोई जवाब नहीं मिला। ठंड पहले से भी ज़्यादा हो गई थी। नहीं ऐसा तो नहीं कि झामाव बर्फ़ में ही गिर पड़ा हो?

उसकी नज़र की पहुंच तक दिखाई देने वाली भेड़ें अब बर्फ़ का एक समूचा ढेर-सा लग रही थीं। निशानी के लिये उसने अपने डण्डे को बर्फ़ में गाड़ दिया और हाथ लगाकर यह देखते हुए कि भेड़ें ज़िंदा हैं या नहीं, वह रेवड़ का चक्कर काटते हुए झामाव के हिस्से की तरफ़ जाने लगा। कुछ देर बाद वह फिर घूम कर अपने डण्डे के पास पहुंच गया – उसने समूचे रेवड़ का चक्कर लगा लिया था। मगर झामाव कहां है? कुत्ता कहां है? क्या यह मुमकिन है कि..? एक

भयानक संदेह को उसने भीतर ही भीतर दबा दिया... मगर वे हैं कहां?

उसने रेवड़ का एक ओर चक्कर लगाया। "कोत्सी! कोत्सी!" की पुकारें भी अनसुनी रहीं। शायद झामाव इसका पता लगाने कहीं चला गया है कि वे किस स्थान पर हैं।

"झा-मा-व!"

सिर्फ़ तूफ़ान के शोर ने उसका जवाब दिया।

तो फिर यही बात है! झामाव उसे अकेला छोड़कर चला गया है। तो... जहां के तहां खड़े रहने से तो कोई फ़ायदा है नहीं, वह अकेला रेवड़ के चक्कर लगाता रहेगा, और वह भी जल्दी-जल्दी! इसलिये वह गहरी बर्फ़ में जितना तेज़ चल सकता था चलने लगा, अब भी एक क्षीण आशा लिये कि झामाव शायद आ ही जाये। तूफ़ान उसके क़दमों से बननेवाले गड्ढे भरता रहा और लगातार चक्कर लगाने से उसमें कुछ गरमाहट आ गई – बल्कि काफ़ी गर्मी महसूस होने लगी। उसने अपना बुर्क़ा उतार दिया और उसे डण्डे पर टांग दिया। उसके चेहरे पर एक मुस्कुराहट आ गई – जब तक यह काली आकृति तूफ़ान में से उभर कर दिखाई पड़ रही है, तब तक वह अकेला नहीं है! बुर्क़े के बिना भी उसे गर्मी लग रही थी और उसके पपाख़ा के नीचे से उसके मुंह पर पसीने की धार बह चली।

तूफ़ान का ज़ोर कुछ घट रहा था। एक ओर से तो आसमान साफ़ होता भी लग रहा था। वह सांस लेने के लिये रुका। अब भी उसे पूरी तरह से विश्वास नहीं हो रहा था कि झामाव कोई ऐसा काम कर सकता है जो चरवाहों में अनसुना हो, इसलिये उसने एक बार फिर उसका नाम लेकर पुकारा।

फिर कोई जवाब नहीं।

कहीं दूर से भेड़ियों का हुम्राना सुनाई दिया। इससे बुरा और हो ही क्या सकता है? अकेले भेड़िये का उसे डर नहीं था मगर जाड़ों में वे गोल बना कर शिकार के लिये निकलते हैं। मन ही मन यह कहते हुए उसने अपनी कटार निकाल ली, "उफ़, झामाव! कल तू मेरे सामने आंख उठा कर कैसे देख सकेगा?"

कटार हाथ में कस कर पकड़े वह इन्तज़ार में खड़ा रहा। एक भेड़िया उसके बिल्कुल नज़दीक था। वह भी इन्तज़ार में ही था— मगर किस बात का? वह गड़रिये का ध्यान अपनी ओर खींचे था जब कि दूसरी ओर से दो और आये और भेड़ों में पिल पड़े। भेड़ें दीनतापूर्वक चीख़ने-मिमियाने लगीं और डर के मारे अन्धी हो भगदड़ में एक दूसरे पर गिरने-पड़ने लगीं, जिसके कारण उनका गोल जाल के पानी से बाहर निकाले जाने पर उसमें तड़फड़ाती मछलियों-सा लगने लगा। स्तेपी के भेड़िये की यह आदत भयानक है— वह एक पर एक बहुत-सी भेड़ें मार देता है गोया हिंसा करने में उसे मज़ा आता हो। निराश सुर्ख़ाई भूखे भेड़ियों पर झपटा। एक पीछे हटा, पर साथ में एक भेड़ लिये। सुर्ख़ाई ने ताक कर निशाना मारा, पर भेड़िया झटक कर एक ओर हो गया और कटार भेड़ के घुप गई। उसने एक मादा भेड़िये को अपनी ओर आते देखा—मादा भेड़िया ही आदमी पर हमला करती है—और कोहनी पर से मुड़ा अपना बायां हाथ अपने सामने कर लिया। जैसे ही भेड़िये ने उसकी कोहनी में अपने दांत गड़ाये, उसने कटार उसके सिर में घुसेड़ दी। तब जाकर कहीं उसे मालूम हुआ कि उसकी बांह में तेज़ दर्द हो रहा है। बड़ी मेहनत से मरे हुए भेड़िये पर से ऊपर उठ कर उसने

दोनों सवालों पर कोई ध्यान न दे उसने पूछा : "सुर्खाई कैसा है ?"

"काफ़ी ख़ून निकल गया है। बेहोश था, जब हमें मिला। झामाव का कोई पता नहीं।"

"वह... घर है।" तीव्र वेदना भरे हृदय से फ़ातिमा के मुंह से किसी तरह शब्द निकले।

"घर पर?" हबीब चलते चलते रुक गया। अगर फ़ातिमा ने यह कहा होता कि वह मर गया, तो शायद उसे इतना अजीब न लगता।

"वह भाग आया, हबीब चाचा। डरपोक बाज़ारी कुत्ते की तरह दुम दबा कर भाग आया।" फ़ातिमा की भावनाओं का बांध टूट गया : वह बुरी तरह से फफकने लगी।

उदास जन-समुदाय फिर ख़ेमे की ओर बढ़ चला।

एक हेलिकॉप्टर सुर्खाई को किज़लर नगर ले गया। वहां वह अगले दिन अस्पताल में मर गया।

फ़ातिमा जन-पंचायत की सुनवाई में गई। पुराना रिवाज तो यह था कि गड़रिये अपने किसी आदमी के अपराध करने पर ख़ुद उसका फ़ैसला करते थे, पर अब देश का क़ानून इन पंचायतों के पीछे है, जिससे इनकी ताक़त भी बढ़ गई है और ज़िम्मेदारियां भी। फ़ातिमा के शौहर को—जिसे उसने उसी रात छोड़ दिया था—गड़रियों की क़तारों से बेइज़्ज़ती के साथ निकाल दिया गया। पर उनकी क़तारों में आई फ़ातिमा, उर्कुख़ के इतिहास में पहली औरत गड़रिया।

कितनी सच है यह कहावत भी कि हर टेढ़ी चोंच वाला पखेरू उक़ाब नहीं होता और न हर लाठी लिये आदमी गड़रिया ही।

पहले फूलों के खिलने के साथ साथ गड़रिये स्तेपी छोड़ देते हैं और अपने रेवड़ों का मुंह अपने घरों के आसपास के पहाड़ी चरागाहों की ओर मोड़ देते हैं।

पर्वतीय वसन्त से बढ़कर अद्‌भुत दुनिया में कोई चीज़ नहीं है। हर ओर स्फटिक-स्वच्छ छोटी-छोटी धाराएं पक्षियों की तरह किलकिलाने, कूजने और कलखने लगती हैं; फेन का मुकुट धारे भंवर बनाती नदियां चट्टानों से टकरा कर टूटने पर ज़ोर का शोर करती ढलुवां शिलाओं पर तेज़ी से आगे बढ़ती जाती हैं; रुकी हुई फुहारों के कुहरे का चोग़ा और इन्द्रधनुष का ताज पहने सैकड़ों मीटर की ऊंचाई से गिरते झरने तरह-तरह की आवाज़ों में गा रहे होते हैं। जंगल, ढलान और खड्ड वसन्तागम से प्रमुदित पक्षियों के समवेत कलरव से भर जाते हैं। लाल, पीले, नीले और सफ़ेद फूल चट्टानों की दरारों और तेज़ ढलानों में से ऐसे बन ठन कर निकलते हैं जैसे कांच के इन्द्रधनुष के टुकड़े बिखर गये हों और मेहनती कठफोड़वे की तेज़ और निरन्तर ठक्-ठक् घाटियों में गूंजने लगती है।

पहाड़ों में लड़कियों को फूल भेंट करने का रिवाज नहीं है। हर तरफ़ फूल ही फूल होते हैं, पर जब कोई आऊल घर लौटने वाले चरवाहों का स्वागत करता है तो उनपर चारों तरफ़ से पहाड़ी फूलों के गुच्छों की वर्षा होती है। इस बार फूल नहीं बरसाये गये। वातावरण उदास था। आऊल सुर्ख़ाई के शोक में डूबा था।

जैनब अपने कमरे से नहीं निकली। भावशून्य आंखों से एकटक सामने ताकती वह एक कोने में बैठी रही। दो

हफ़्ते वह रोती-सिसकती ही रही। अब उसकी आंखों में आंसू नहीं रह गये थे, केवल उसका दर्द उनमें रह गया था।

अपने-अपने घर जाने से पहले गड़रियों ने उसके साक्ल्या जाकर समवेदना प्रकट की। इसी तरह फ़ातिमा भी उसके यहां गई, जो पांचों में ज़ैनब की सबसे अच्छी सहेली थी। बच्ची की तरह ज़ैनब ने अपना सिर फ़ातिमा की गोद में रख दिया, उसकी देह ज़बर्दस्ती दबाई जा रही सिसकियों से कांप रही थी।

लड़कियों ने आपस में यह व्यवस्था कर ली थी कि वे ज़ैनब को देर तक अकेले नहीं रहने देंगी। पास के गांव से सकीनत आ गई; विश्वविद्यालय में पहले वर्ष की पढ़ाई पूरी कर शहर से किस-तमान आ गई। गृहयुद्ध का हीरो और कीर्ति पदक से विभूषित उस्मान भी, जो तब भी विचलित नहीं हुआ, जब उसकी छाती पर पिस्तौल रखी हुई थी, सुर्खाई की बातें करते, जिसके बारे में उसे उम्मीद थी कि उसके बाद वही एक दिन अध्यक्ष बनेगा, अपने आंसू नहीं रोक सका। एक गड़रिये और आदमी के रूप में सुर्खाई की प्रगति की तरफ़ वह कितने ध्यान से देख रहा था!

सामूहिक फ़ार्म के बोर्ड की मीटिंग में उस्मान ने, पहाड़ी रिवाज के मुताबिक़, सुर्खाई की याद में चौराहे पर एक स्मृतिचिह्न स्थापित करने का प्रस्ताव किया।

इस विषादमय वसन्त में नसीबा प्रायः ज़ैनब के पास चली जाती थी। वसन्त उसके लिये भी दुख भरा ही था। गांव की ज़हरीली ज़ुबानों ने उसे "विवाहिता कुंआरी" का नाम दे दिया था।

जिस दिन चरवाहे लौटकर आये, उसी शाम को नसीबा

ने गांव वालों को दार्घिन के शायर सैयद का गृहयुद्ध के ज़माने का लिखा एक मर्सिया सुनाया, जो अब हर किसी को ज्ञात और पसन्द लोकगीत बन गया है।

"ओ! अपने सरकाशियाई घोड़ों पर सवार दूर से आने वाले घुड़सवारो," नसीबा ने गाया और प्रतिध्वनित करती घाटियों ने उसके उदास, मधुर स्वरों को अपना लिया, "तुम्हारे बीच मुझे मेरा 'जिघित' क्यों नहीं दिखाई दे रहा, मेरा अपना 'जिघित'? हवा से जब दरवाज़ा खड़खड़ाता है, मैं घर में से यह कहती दौड़ पड़ती हूं: कहीं वह मेरा प्रियतम ही तो नहीं, जो अपनी प्रेयसी के पास लौट आया है? जब सूर्य-किरण खिड़की में घुस पड़ती है, तो मैं पूछती हूं: कहीं यह मेरे जीवन का प्रकाश ही तो नहीं जो अपनी प्रेमिका के पास लौट आया है? अरे घुड़सवारो, तुमने उसे कहां छोड़ दिया? उस दूर के अजाने देस में तुम उसे कहां छोड आये?"

लाल छापामार जब गृहयुद्ध से लौटे थे, तो पर्वतों की एक बेटी इसी तरह रोई थी। और, नसीबा के मुंह से ये बोल सुनकर बहुत से आदमियों ने चोरी-चोरी अपने आंसू पोंछे; और औरतें अपने सफ़ेद दुपट्टों में मुंह छिपा कर सिसकियां भरने लगीं।

पर अब नसीबा की आवाज़ नई ताक़त के साथ उभरी, जैसे अबाबील पर्वतीय आकाश में ऊंचे उड़ती चली जाये। अब वह युद्ध में तपे छापामारों का गंभीर और विवेकपूर्ण उत्तर गा रही थी:

"अफ़सोस, यह सच है कि लड़ाई के मैदान में हम बहुतों को छोड़ आये। उन दूर के अज्ञात प्रदेशों में हम

बहुतों को सोता छोड़ आये। पर हमारे जवानी के फूल अकारथ नहीं गये। हमारी दुनिया पर एक गुलाबी उषा फैल गई है, हमारी स्वतंत्रता की लाल उषा।"

हमारे यहां कहा जाता है कि गीत चमत्कार कर सकते हैं: वे दुख को सुला सकते हैं, ख़ुशियां जगा सकते हैं। और गीत नसीबा के होंठों से उन पहाड़ी झरनों की तरह झरते हैं, जिनसे पहाड़ी घास की बेचैन प्यास बुझा करती है।

हां, नसीबा ने गाया—"सरे आम गाया"—एक बार फिर। बाद में ज़ाज़ा ने उसे अपने लड़के का नाम कीचड़ में घसीटने के लिये जी भर कर बुरा-भला कहा। नसीबा सब चुपचाप सुनती रही। चुप रहना उसकी आदत हो गई थी; बिना किसी शिकवे-शिकायत के उसने यह मान लिया था कि उसकी तक़दीर में यही बदा था; यहां तक कि वह ज़ाज़ा को अम्मा कहकर बुलाती थी। अब घर का सारा कामकाज नसीबा के कन्धों पर आ गया था। ज़ाज़ा आराम कर रही थी।

वसन्त का एक सुहाना दिन था नसीबा चश्मे के किनारे सपाट पत्थरों पर कपड़े धो रही थी। चश्मा आऊल से कुछ दूर था और उधर लोगों का आना-जाना भी कम था, इसलिये कम से कम यहां वह मन भर गा सकती थी। वह जब कुबाख़रूमी नामक उत्सव के बारे में, जो वसन्त में पहली बार हल चलाने के समय मनाया जाता है, एक पुराना लोकगीत गा रही थी, तो बस गूंज ही उसके साथ थी। मगर यहां भी एक सुनने वाला था ही। "बूढ़े बाबा" इब्राहीम को झरने के पास का एक ढलवां ऊबड़-खाबड़ टुकड़ा

जोतने के लिये सौंपा गया था—उन्हीं टुकड़ों में से एक, जिन्हें आजकल के नौजवान "मस्से" कहते हैं और जिनसे पार पाना उनके बूते का नहीं है।

बैल सुस्ता रहे थे और बूढ़े बाबा मन ही मन यह कहते हुए कि "क्या सुनहरी आवाज़ है!" बड़ी सावधानी से झाड़ी में से रास्ता बनाते बढ़े जा रहे थे कि कहीं वह निराला गीतपाखी चौंक कर डर न जाये। पर चिड़ियों-सी चौकन्नी नसीबा ने इस मन्द सरसराहट को सुन लिया और नज़र घुमाकर देखा कि पुराने ढंग के हल में जुते, सिर झुकाये, बैल बिना किसी आदमी के वहां खड़े हैं। पहाड़ों में कभी-कभी खेत बस ऐसे भी होते हैं कि ज़मीन के छोटे से टुकड़े के किनारे-किनारे पत्थरों की दीवार खड़ी कर दी गई होती है जिससे बरसात से कहीं मिट्टी बह न जाये—और बताइये भला, ऐसे खेत में ट्रैक्टर क्या काम देगा। ट्रैक्टर के लिये तो ढेर सारी जगह चाहिये और इन बेडौल जगहों के लिये तो अब भी सामूहिक फ़ार्म के मिस्त्रियों द्वारा थोड़ा-बहुत बदले हुए पुराने ढंग के हल ही इस्तेमाल किये जाते हैं।

बैलों के पास किसी को न पा नसीबा ताड़ गई कि माजरा क्या है। "बाबा!" झाड़ियों की ओर मुंह कर उसने आवाज़ दी। "यह न कहना कि मेरी वजह से जुताई नहीं हुई, मैंने बैलों को नहीं रोका है।" इस क्षण नसीबा एक सादे, निश्छल सौन्दर्य की प्रतिमा लग रही थी, ऐसा सौन्दर्य, जो चश्मे की दृश्यावली के सौन्दर्य में कुदरती तरीक़े से मिल गया था। वह अपना घाघरा ऊपर तक उठाये थी, उसकी टांगें घुटनों तक नंगी थीं और हाथ के बुने नमदे को मथते उसके पैरों की चाप कभी कुमिक नृत्य की तरह मन्द तो कभी

लेज़गीन्का के पदचापों की तरह तेज़ हो जाती थी। इसलिये झाड़ियों से निकल कर बाहर आने पर बूढ़े बाबा कुछ झेंप-से गये।

"उफ़ गर्मी... है न, बिटिया?" इब्राहीम किसी तरह बोला। "मैं इधर ही आ रहा था–मैं चश्मे से पानी पीना चाहता था।"

नसीबा ने एक घड़ा उठाया और पानी में अपनी परछाई देखने के लिये रुकती हुई, धारा में कुछ ऊपर चली गई, जहां का पानी गंदला नहीं था। भरा घड़ा बूढ़े बाबा को देती वह बोली:

"लो पियो, बाबा। मैंने सोचा कि मेरे गाने की वजह से आपने काम बंद कर दिया है। आप तो जानते ही हैं, लोग कहते हैं कि मेरे गाने से काम में ख़लल पड़ता है।"

पिछले ही हफ़्ते सामुदायिक बेकरी में जब वह रोटी पका रही थी, तो दूसरी औरतों ने उसे गाना सुनाने के लिये कहा। गाना सुनते हुए वे ऐसे सुध-बुध भूल गईं कि उन्हें तभी ध्यान आया, जब रोटी के जलने की गंध आने लगी। घर पहुंचने पर उनके मर्दों ने उन्हें बुरा-भला कहा, तो कुछ औरतों ने सारा दोष उस "विवाहिता कुंआरी" और उसके गीतों पर थोप दिया, जिसकी वजह से वे सुध-बुध भूल गई थीं।

"शैतान इनकी ज़ुबानों को गलाये," जी भर पानी पी चुकने पर बूढ़े बाबा बड़बड़ाये, पानी की बूंदें उनकी घनी मूंछों पर हीरों की तरह चमक रही थीं। "गीत हमारे लिये ऐसे ही ज़रूरी हैं जैसे इस तेज़ गर्मी में पानी.. इन निरे बेवकूफ़ों की तुम मत सुना करो, बिटिया। और हां, शुक्रिया।"

या तो ठंडे पानी से बुझी प्यास से, या गाने से, या फिर इस तरुणी सुन्दरी से दो बातें कर लेने से इब्राहीम को लगा जैसे उसकी उमर पहले से काफ़ी कम हो गई है। नसीबा से विदा होकर वह ज़िन्दादिली के साथ अपने बैलों और हल की ओर वापस चल दिया। गांव के छोटे-छोटे बच्चों का झुण्ड ख़ुश-ख़ुश शोर मचाता और नसीबा की ओर हाथ हिलाता तेज़ी से गुज़र गया। दिन की गर्मी के मारे वे एक झरने के सतरंगे "सेहत के पुल" के नीचे (यहां लोग इन्द्रधनुष को यही कहते हैं) नहाने और एक दूसरे पर छींटे उछालने चले आये थे। और यह सच है कि इन्द्रधनुष वहीं बनते हैं, जहां हवा स्वच्छ और ताज़ा होती है, जहां चारों ओर की हर चीज़ फुहारों से साफ़-सुथरी धुली होती है और जहां हर सांस में आप स्वास्थ्य को आत्मसात् कर सकते हैं।

हमारे पहाड़ी आऊलों की औरतें अपनी बुनाई और ग़लीचे बनाने के लिये मशहूर हैं। वे अपना रंगबोध और वास्तविक रंग, दोनों ही, पहाड़ों से ग्रहण करती हैं और इसके लिए उनमें सबसे कुशल औरतें "सतरंगे पुलों" वाली जगह ही चुनती हैं, क्योंकि उनका कहना है कि वहां ऐसी जड़ी-बूटियां होती हैं, जिनके रसों से ऊन के लिये सबसे चटकीले और शुद्ध रंग मिलते हैं।

नसीबा भी इन बच्चों की तरह नहाना चाहती थी, पर क्या अब सभी यही नहीं कहा करते हैं कि वह लड़की नहीं औरत है? वह लड़कों को तेज़ ढलान पर उछलते-कूदते जाते देखती रही और मन ही मन कुढ़ती रही, "मगर मुझे तो नहीं लगता कि मैं सयानी हो गई हूं!" दोपहर होते-होते धुलाई ख़त्म कर वह झाड़ियों पर कपड़े फैलाती रही

ग्रौर गुनगुनाती रही, "लो, सूखो पड़े पड़े!" वह बैठी ही थी कि उसे याद ग्राया कि उसे एक बोझा मिट्टी भी ले जानी है। उसने फावड़ा ग्रौर बोरा उठाया ग्रौर उस गड्ढे के पास गई, जहां से सारा गांव ग्रपने ग्रपने साक्ल्यों की दीवारों की मरम्मत के लिये मिट्टी ले जाया करता था।

बड़ी मुश्किल से उसने भारी बोझा ग्रपने कन्धों पर उठाया ग्रौर फावड़े के सहारे टेक लेती धीरे-धीरे ग्रपने घर की ग्रोर चल पड़ी। एक घुड़सवार पीछे से उस तक ग्रा पहुंचा ग्रौर उतर कर बोला:

"जो कहीं मेरा घोड़ा बोल सकता तो वह कहता: 'ग्रगर ग्रादमी इस तरह के बोझ ढोने लगे तो हम जानवर किसलिये हैं?' पहाड़िन, ग्रपना बोझ मेरे घोड़े की पीठ पर रख दे।"

कठिनाई से घूमकर नसीबा ने हिज़री को पहचान लिया ग्रौर शरमा गई। हिज़री का मुंह ग्रचरज से फटा रह गया। वह बोला, "तुम?"

"हां, मैं।"

"मगर क्यों, नसीबा? तुम भला?.. यह बोरा तुम्हारे हिसाब से बहुत वज़नी है। इसे नीचे उतारो।" वह उसकी तरफ़ बढ़ा, मगर वह पीछे हट गई।

"शुक्रिया, हिज़री। तुम्हारा घोड़ा कई लोगों से भी ज़्यादा रहमदिल है। पर मेहरबानी कर मेरी मदद मत करो। कोई देख लेगा तो तरह-तरह की बातें उड़ाता फिरेगा।" वह घर की ग्रोर बढ़ चली।

"नसीबा!" हिज़री मुश्किल से बोल पाया। "सुनो!... मेरी ज़बान बन्द है ग्रौर मुझे तुमसे इतनी बातें कहनी हैं...

अगर तुम्हें मेरा घोड़ा नहीं चाहिये तो अपना बोरा ही मुझे दे दो और मैं इसे गांव के छोर तक ले चलूंगा।"

"हिज़री, नहीं," किसी तरह अपने आंसू ज़ब्त करते नसीबा ने मिन्नत की। "अब इसे कौन बदल सकता है..."

"तुम्हारा मतलब है तुम्हारे करम में यही लिखा था... तुम्हारी तक़दीर में? पर लोग अपनी तक़दीर ख़ुद बनाते हैं। तुम्हारी तक़दीर तुम्हारी आवाज़ में है। ऐसी आवाज़ लेकर तुम्हें मिट्टी के बोझ ढोने की ज़रूरत नहीं। तुम्हें अपनी आवाज़ की वैसी ही हिफ़ाज़त करनी चाहिये, जैसी कुबाची का सुनार अपनी कारीगरी की करता है।"

"मेरे पास मत आओ। लोग देख लेंगे।"

"देखने दो उन्हें!"

"तुम अपनी राह जाओ और मैं अपनी।"

"वह बोझा नीचे रख दो, वरना मैं इसे तुमसे छीन लूंगा! मैं कहे दे रहा हूं!"

"तुम्हें दूसरे आदमी की बीवी के नज़दीक नहीं आना चाहिये। तुम क्या हमारे सब क़ायदे-क़ानून भूल गये हो?"

"तुम किसकी बीवी हो? कैसा मज़ाक़ है—कैसा गन्दा मज़ाक़ है! तुम भी इन नानी की कहानियों में विश्वास करने लगी हो और अब यह वाहियात 'तक़दीर' का क़िस्सा ले बैठी हो।"

"नहीं, हिज़री, तुम्हें दूसरे आदमी की बीवी के नज़दीक नहीं..."

"नसीबा, सोचो भला तुम क्या कह रही हो। क्या महज़ इसलिये कि मैं मर्द हूं मुझे दूसरी औरत के नज़दीक जाकर उसे डूबने से नहीं बचाना चाहिये?.. मैं बेवकूफ़

बुड्ढों के इन पुराने कायदे-क़ानूनों पर थूकता हूं और तुम्हें सलाह देता हूं—तुमसे मिन्नत करता हूं—कि तुम भी ऐसा ही करो। बोरा नीचे रख दो, नसीबा!"

"हिज़री, मेहरबानी करके! .." हालांकि वह चाहती थी कि जो कुछ उसके मन में है, कह डाले, पर वह यह कह नहीं पाई कि इस समय अगर हिज़री कोई मदद दे देगा, तो उससे भविष्य में उसकी ज़िन्दगी कोई ज़्यादा आसान नहीं हो जायेगी। पर उसने बोरा नीचे रख दिया। हिज़री ने उसे उठाकर काठी के आगे के उभरे हुए हिस्से पर रख घोड़े पर चढ़ते हुए कहा :

"किसी भी दिन और हर रोज़ मैं तुम्हारे कन्धों पर का बोझ उठाने को तैयार हूं, ताकि तुम गाती रहो। मैं ईंधन काट लाऊंगा, कपड़े पछारूंगा, गायें दुहूंगा, खाना पकाऊंगा, मिट्टी ढोकर लाऊंगा— तुम्हें इस मशक़्क़त की ग़ुलामी से बचाने के लिये मैं सब कुछ करूंगा।"

"तुम्हें कैसे पता कि मुझे यह सब करना पड़ रहा है?"

"मेरी मां ज़ाज़ा के यहां गई थी और उसने सब अपनी आंखों से देखा है।"

"मेहरबानी करके, हिज़री... इसके बारे में बात मत करो। और इससे पहले कि कोई देखे, चले जाओ।" जैसे हार मान ली हो, ऐसी मुद्रा के साथ उसने घोड़े की पीठ पर थपकी दी। जानवर बढ़ने को हुआ, पर हिज़री ने तुरन्त लगाम खींच ली ताकि इस अप्रत्याशित मिलन के क्षणों में कुछ वृद्धि हो जाये। पर नसीबा झिझक में ही रही और इसी प्रकार सकुचाते और बढ़ते वे गांव के किनारे तक आ पहुंचे, जहां हिज़री ने, नसीबा की मिन्नत भरी नज़र के

जवाब में बोरा ज़मीन पर धर दिया। जब तक वह कुछ दूर नहीं चला गया वह वहीं खड़ी रही, फिर बोरा अपने कन्धों पर उठाकर चल पड़ी।

"अब लगती है तू असली पतोहू," नसीबा के आंगन में घुसने पर ज़ाज़ा बोली। बोरे को उतारने में मदद देने के लिये वह बढ़ी ज़रूर मगर बोरा इतना भारी था कि उससे न संभल सका और ज़मीन पर आ रहा। "तू एक ही बार में इतना बोझा क्यों उठा लाई? तेरे लिये यह बहुत ज़्यादा है... जा, एक चक्कर और लगा आ और तब हमारे पास काफ़ी मिट्टी हो जायेगी।"

"दुबारा मैं नहीं जाने की... मेरे बस का नहीं है।" पहले कभी नसीबा अपनी "सास" से इस तरह नहीं बोली थी।

"क्या कहा तूने? अपने शौहर की वालिदा से इस तरह बोलने की तुझे जुर्रत कैसे हुई?"

"मेरा कोई शौहर नहीं। कहां है तुम्हारा बेटा? अगर वह यहां होता और उसमें रत्ती भर भी आदमीयत होती, तो मुझे सुबह से रात तक यूं बैल की तरह जुते नहीं रहना पड़ता।"

"बन्द कर अपनी ज़बान! तू है और किसलिये इस घर में? क्या तू चाहती है कि मैं बुढ़िया तेरे लिये खटा करूं?.. ठीक है, अगर तुझे लाज-शरम नहीं है, तो मत जा दूसरी बार... अब यह मिट्टी सान डाल और गाय दुह ले। मैं बेकरी जा रही हूं।"

इस तरह नसीबा अपने दिन गुज़ार रही थी—जिनमें ख़ुशी, सपनों और उम्मीद का नाम न था।

हसन मुश्किल से ही घर पर रहता। नसीबा से बोलते हुए वह बड़ी नर्मी से बात करता और उसके सामने कभी ज़ोर से न बोलता। वह अपनी "पतोहू" के सादगी भरे हाव-भाव और रूप की प्रशंसा करता और बहुत बार उसने ज़ाज़ा को लड़की को मिट्टी सानने जैसा भारी काम देने के लिये झिड़का भी। मगर ज़ाज़ा ने उसकी एक न सुनी और जैसे-जैसे दिन बीतते गये, नसीबा के लिये उसका दिल कठोर ही होता गया।

ज़ाज़ा के मना करने के कारण नसीबा घर में कभी नहीं गाती थी, मगर खेतों में, चश्मे पर, या गांव के कुएं पर उसने अपना गाना जारी रखा। चुग़ुलख़ोरों ने यह ख़बर ज़ाज़ा तक पहुंचाई।

यद्यपि ज़ाज़ा को ख़ुद अखरोट पसन्द नहीं थे, क्योंकि कहा जाता था कि उनसे आवाज़ फट जाती है, लेकिन वह अपने खानों में उनका ज़्यादा से ज़्यादा इस्तेमाल करने लगी।

"तुम चटनी में इतने पिसे अखरोट क्यों डालती हो?" नसीबा ने उससे पूछा।

"मुझे अखरोट पसन्द हैं। उमलात को भी।"

"मगर मुझे पसन्द नहीं।"

"इस तरह ज़रा-ज़रा-सी बातों पर जो शोर मचाती हो, उससे तो लगता है कि तुम्हें हम लोग भी पसन्द नहीं हैं।"

मैं क्यों चाहूं इन लोगों को, नसीबा ने सोचा। मेरा इनसे रिश्ता ही क्या है?

एक शाम हबीब अपनी लड़की से मिलने आया। अब्बा जिस दिन मिलने आते थे वह दिन नसीबा के लिये छुट्टी का

होता था; उनसे कहकर वह अपने दुख का बोझ हलका कर लेती थी। हबीब ने इस अजीब "शादी" से अपनी लड़की को छुटकारा दिलाने के लिये काफ़ी सोचा-विचारा था, मगर इस बारे में कुछ करने की बात वह टालता ही रहा था, क्योंकि वह हसन को नाराज़ नहीं करना चाहता था। इस बार ज़ाज़ा ने उसे शाम के खाने में शरीक़ होने के लिये कहा। एक तश्तरी में से एक कौर खाते ही उसने कहा:

"कितना अखरोट भर देती हो तुम अपने खाने में! हम चरवाहों की आवाज़ तो इन के बिना भी वैसे ही फटी हुई होती है।"

तो, यह इरादा था ज़ाज़ा का, नसीबा ने सोचा—मेरी आवाज़ ही ख़राब हो जाये! शुक्रिया, प्यारी सासजी!

इसके बाद से वह न गाने के हुक्म की उपेक्षा करने लगी। मन होने पर वह घर में भी गाने लगी। सड़क पर गुज़रता कोई भी उसकी आवाज़ सुनकर ठिठक जाता, बाड़ में से झांकने की कोशिश करता और तब तक वहां से टलने का नाम न लेता, जब तक गाना ख़त्म न हो जाता। यहां तक कि वे रिश्तेदार भी, जो गाने को 'बेशरमी' कहकर नाक-भौं चढ़ाया करते थे, नसीबा की आवाज़ से खिंचे, उसका गाना सुनते देखे जा सकते थे। पर हसन का पड़ोसी बूढ़ा बाबा इब्राहीम तो उसका गाना सुनने के लिये सुबह से रात तक उत्सुक रहता। उसका सिर प्रशंसा में झूमता; वह अपनी मूंछों पर उंगलियां फेरता, ठंडी सांसें भरता और चोरी-चोरी अपने आंसू पोंछता। वह अपनी ज़िन्दगी के लम्बे अरसे के बीच देखी-सुनी उन अनेक प्रतिभाशील औरतों के बारे में सोचता, जिन्हें उस बुलन्दी

तक नहीं पहुंचने दिया गया, जिसकी कि वे हक़दार थीं, बल्कि जिन्हें आदत (रिवाज) के काई लगे पत्थरों से पीस दिया गया था। दाग़िस्तान के लोग अनखि़ल मरीन का नाम कितने गर्व के साथ लेते हैं, जो अपनी बहनों की बदक़िस्मती के गीत गाती थी और जिसके गीत अब भी आऊलों में गाये जाते हैं! पुराने ज़माने में पैसे वाले और प्रभावशाली लोग अनखि़ल मरीन के गीतों से जितना डरते थे, उतना किसी शूरवीर के हाथ की शमशेर, कटार या पिस्तौल से भी नहीं। गोली का जवाब गोली से दिया जा सकता है, शमशेर का जवाब शमशेर से दिया जा सकता है, पर इस निडर, तेज़ दिमाग़, प्रतिभाशाली औरत का क्या जवाब था, जिसके गीत उनकी झूठी शान-शौक़त उधेड़ कर रख देते थे और उनका कमीनापन दुनिया के सामने उघाड़ देते थे? बद्दुआएं? मगर बद्दुआएं तो गदहिले के हाथ की सोंटी के ही बराबर थीं: अनखि़ल मरीन के गाये गीत पहाड़ी शिकारी की बंदूक से निकली गोली सरीखे थे, और हाथ में महज़ एक सोंटी लिये बंदूक़ का मुक़ाबला कौन कर पाया है? जब कोई सेठ सुनता कि वह उसके आऊल में आ रही है तो वह अपने साक्ल्या के किसी अंधेरे कोने में दुबक रहता... मगर एक रात जब कि आऊल गहरी नींद में खोया था, उन्होंने इस बहादुर औरत को पकड़ कर उसके होंठ ऐसे सी दिये—जी हां, उसके होंठ ऐसे सी दिये जैसे कोई मोची जूता सीता है। अपने होंठों का मांस चीरकर अनखि़ल मरीन ने टांके तोड़ डाले और ख़ून की धार बहते मुंह से उसने अपना अन्तिम गीत गाया—अत्याचारी के संहार और अन्याय को हमेशा के लिये ख़त्म करने के लिये एक ललकार। और यही था वह

गीत, जिसने पहाड़ी लोगों को अपनी जन्मभूमि को आज़ाद कराने के लिये जंग करने को उकसाया।

एक अरसे से इब्राहीम नसीबा के बारे में बात करने के लिये बोल्शेविक उस्मान के पास जाने की सोच रहा था, मगर वह इसे टालता ही रहा—ऐसी पड़ोसन उसे कहां मिलती तब?

आख़िरकार उसने फ़ैसला कर लिया।

जब वह सामूहिक फ़ार्म के कार्यालय पहुंचा, तो ज़मुर्रद वहां पहले से ही मौजूद थी। उसने एक एक लफ़्ज़ सुना मगर अपनी राय नहीं ज़ाहिर की। वह ख़ुश थी कि अब गांव के सबसे बुज़ुर्ग आदमी ने आदत के क़ानूनों के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाई है।

"और क्यों, सदर साहब," इब्राहीम कह रहा था, "इस ख़ूबसूरत गाने वाली को उस साक्ल्या में पंछी की तरह पिंजरे में क़ैद कर क्यों रखा जाता है? .. और वह जो आप बढ़िया-सा संस्कृति-सदन बनवानेवाले थे, उसका क्या हुआ?"

"बनवानेवाले नहीं थे। हम उसे अब बना रहे हैं।"

"अच्छा, तो यह रही बात। और उसका इस्तेमाल कौन करेगा? एक तो नसीबा को ही लो। मैं सौ से ऊपर का हो गया हूं, मगर मैंने उसकी-सी आवाज़ कभी नहीं सुनी। उसके बिना आपका संस्कृति-सदन बेकार है। रूसी रेडियो पर आपने वह गीत तो सुना ही होगा, जीवन और काम दोनों में है गीत एक सहारा। इससे ज़्यादा सच्ची बात कोई नहीं हो सकती।"

"नसीबा के बारे में मैंने काफ़ी कुछ सोचा है—काफ़ी,

मेरे प्यारे इब्राहीम आज़ी," उस्मान ने बुज़ुर्ग को विश्वास दिलाया। "और उस उमलात से तो मैं बहुत ख़फ़ा हूं... मैंने इस बारे में अभी तक कुछ किया क्यों नहीं? मैं उसके लौटने का इन्तज़ार करता रहा हूं।"

"यह तो ठीक है। मगर उसका तो अब भी कोई पता नहीं।"

"यह सच है—और है यह बड़े अफ़सोस की बात। वह बड़ा अच्छा कामगार है... अच्छा, तो तय रहा; मैं नसीबा के मां-बाप से कुछ कहूंगा। शुक्रिया, इब्राहीम, आने का और इस मशविरे का भी शुक्रिया..."

अपने अब्बा के चले जाने के बाद नसीबा अपने कमरे में जाकर लेट गई। खुली खिड़की से चांदनी अन्दर आ रही थी और उसे एक पुरानी कहानी की याद आ गई जिसमें चांद और सूरज भाई-बहन होते हैं। उसे यह नहीं ख़याल आ रहा था कि क्यों सूरज को बहन बनाया गया था और चांद को भाई।

सोने से पहले के इन्हीं क्षणों में वह उन दिनों की याद कर सकती थी, जब उसकी ज़िन्दगी ख़ुशी और सुहाने सपनों से सराबोर थी। वह उस ज़माने की याद करती, जब वह स्कूल में, गांव के क्लब में गाया करती थी, और—एक बार तो—ज़िला केन्द्र के संस्कृति प्रासाद में भी। कितनी घबरा गई थी वह तब! जब वह स्टेज से लौटी, तो रो रही थी, क्योंकि उसका ख़याल था कि वह उससे कहीं अच्छा गा सकती थी। हर चीज़ से वह ऐसी चकरा गई थी कि तालियों की गड़गड़ाहट भी न सुन सकी। उसकी सफलता इतनी

अचानक और इतनी बड़ी थी कि वह उसको ठीक से अनुभव भी नहीं कर सकी। लोग स्टेज के पीछे आये, कस कस कर हाथ मिलाये, उसे बधाई दी और उसका शुक्रिया अदा किया। ज़िला-केन्द्र के अख़बार ने उसके बारे में लिखा। वह मख़चकला में होनेवाले दाग़िस्तान के राष्ट्रीय शौक़िया कलाकारों के उत्सव में जाने के लिये चुनी गई। उस रात जिन लोगों ने उसे बधाई दी थी उनमें हिज़री भी था। वह बड़े जोश में था और हमेशा की तरह पुर मज़ाक नहीं था।

"तुमने तो बुलबुल की तरह गाया," उसने कहा, फिर तुरन्त उसने अपनी ग़लती सुधारी। "बुलबुल? – नहीं, नहीं, उससे दस गुना बेहतर – सौ गुना बेहतर! बुलबुल का तुमसे क्या मुक़ाबला? – परों की बनी गेंद जो गौरैया से कोई बढ़कर नहीं टरटराती। मगर तुम तो इन्सान हो; तुम्हारी आवाज़ लफ़्ज़ों को ठोस सोने में बदल देती है और उन्हें आसमान की बुलन्दी तक उड़ने की ताक़त देती है... नसीबा, मेरी बात सुनो! यह तुम्हारा फ़र्ज़ है कि तुम अपना अभ्यास जारी रखो और अपनी आवाज़ साधो। तुम्हें शहर जाकर आगे सीखना चाहिये, नहीं, तुम्हारे लिये उपयुक्त स्थान तो मास्को की संगीतशाला है!"

और इस तरह थकी-मांदी नसीबा सो जाती – अपने और आंखों में आंसू लिये सपनों में मुसकुराती। उसके सपनों में एक विशाल काला दैत्य आता, जो सूरज को आकाश से चुरा ले जाता। और इस दैत्य की आवाज़ ज़ाज़ा की आवाज़ से मिलती-जुलती थी।

अगली सुबह नसीबा, हसन के घर आने के बाद से पहली बार, आंगन में दूध दुहने के लिये नहीं दिखाई दी।

बाड़ के उस पार इब्राहीम उसके मुंह से प्रभाती सुनने के लिये बेताब हो रहा था। जब उसे, नसीबा नहीं, बल्कि, अकेली ज़ाज़ा दिखाई दी तो उसे चिन्ता होने लगी। उसने अपनी पड़पोती को यह पूछने के लिये भेजा कि हसन चरागाहों से कब लौटेगा। छोटी लड़की ख़ुशी-ख़ुशी दौड़ गई, पर लौटी तो उदास थी। नसीबा बीमार बिस्तर में पड़ी थी।

एक बर्फ़-से ठंडे पानी के चश्मे के पास वाले चौरास्ते पर लम्बे-चौड़े अख़रोट के पेड़ अपने जन्म के गांव से दूर एक बहादुर की तरह मरे पहाड़ी बाशिन्दों के स्मृतिचिह्नों पर चौकीदारी-सी करते खड़े हैं—स्मृतिचिह्न हैं चट्टानों की नींव पर रखे तराशे हुए पत्थर, जिन पर नाम और तारीख़ें खुदी हैं।

पहाड़ी स्थानों में हमेशा या तो चौरास्तों पर या किसी दर्रे की सब से ऊंची जगह पर सड़क के किनारे आपको इस तरह के स्मृतिचिह्न दिखाई पड़ेंगे। इनमें किसी-किसी पर काई की भूरी-भूरी दाढ़ी है और समय ने उनपर अंकित प्राचीन अरबी लिखावट को क़रीब-क़रीब मिटा दिया है। ये उन बुज़ुर्गों की तरह हैं, जो ग़म के मारे घुले जा रहे हैं। और ज़रा इन दोनों को तो देखो, एक दूसरे का सहारा पाने के लिये ये एक दूसरे की ओर झुक गये हैं। इन पर सोलहवीं शताब्दी की तारीख़ें पड़ी हैं और ये उन दो आदमियों की अमर स्मृति में हैं, जो अपने सारे मतभेदों के बावजूद साथ-साथ लड़े और सगे भाई बन गये—देरबेन्त में राजदूत रूस का पुत्र अलेक्सान्द्र और दाग़िस्तान का योद्धा अलीबेक, जिसकी लड़ाई में बहादुरी की प्रशंसा तुर्क हमलावर लाल-मुस्तफ़ा जैसे दुश्मनों तक ने की थी। उन बहादुरों की यादगार में

भी यहां स्मृतिचिह्न हैं, जिन्होंने फ़ारस के नादिर शाह को दाग़िस्तान से खदेड़ा था, और इन्हीं के पास गृहयुद्ध तथा द्वितीय विश्वयुद्ध में काम आये लोगों के स्मृतिचिह्न भी हैं– जिनमें हिज़री के अब्बा भी हैं। और वह, वहां, जो सबसे नया, काले ग्रेनाइट की बुनियाद पर एक सादा-सा पत्थर रखा है, वह हमें और हमारे पीछे आने वालों को गड़रिये सुर्ख़ाई की याद दिलाता रहेगा। अपनी सारी सादगी के बावजूद यह ख़ूबसूरत है। यूं इस पर कोई बड़ी कलात्मक कारीगरी नहीं की गई है पर सुतबुक के कुशलतम संगतराश ने एक दूसरी से गुड़ी-मुड़ी दो पत्तेदार टहनियों को सजीव उतार दिया है जो एक बड़े से तमग़े को घेरे हैं जिसपर सुर्ख़ाई का नाम और उसकी मृत्युतिथि अंकित है।

इसी पत्थर से लिपटी बैठी थी जवान बेवा ज़ैनब, जो अपना मुंह अपने हाथों में छिपाये थी और जिसकी उंगलियों के बीच से आंसू रिस रहे थे...

"...घर के चूल्हे की चिनगारियों में जान रहते किसी जवान बीवी का शौहर न मरे! जिस औरत के पेट में बच्चा हो उसे रंडापे का दुख कभी न उठाना पड़े! ऐसा बच्चा पेट ही में न आये, जिसका जन्म पिता की जीती-जागती आंखों में ख़ुशी न पैदा कर सके!" पहाड़ी आऊलों की औरतें भय और सिहरन से इसी प्रकार अपने दुख रोती-गाती हैं, क्योंकि दुनिया का कोई भी दुख उसके दुख की बराबरी नहीं कर सकता, जिसके गर्भ में ऐसा बच्चा हो जिसका बाप मर गया हो।

एक कड़ा, कड़वा-सा थक्का दम घोंटता-सा ज़ैनब के गले में अटक गया। आसमान ऐसा धमका रहा था कि बस अब उसपर टूट ही पड़ेगा। घने जामुनी बादल दारुण दुख

के आंसुओं में फूट पड़ने को सिर पर मंडरा रहे थे। पेड़ भयाक्रान्त दैत्य की तरह कांप और थर्रा रहे थे। आसमान का रहा-सहा नीला भाग भी ग़ायब हो गया और मौत का-सा अंधेरा हर चीज़ पर छा गया। बिजली की दांतेदार कौंध ने नाराज़गी के साथ घाटी को चाक कर डाला और फिर एक कर्णभेदी गरज हुई। किसी पहाड़ी साक्ल्या में जब कोई ज़िन्दगी और मौत के बीच झूल रहा होता है तो लोग ऐसा करते हैं: वे एक मज़बूत कपड़े के टुकड़े को इस विश्वास के साथ फाड़ते हैं कि उसकी आवाज़ से डरकर बीमार ठीक हो जायेगा या फिर—जैसा कि ज़्यादा हुआ करता है—उससे डरकर ज़िन्दगी की आख़िरी चिनगारी भी निकल जाती है।

फिर कौंध, फिर गरज। गूंज से दुगुनी-चौगुनी होनेवाली पहाड़ पर बिजली की कड़क मैदान से कितनी भिन्न होती है!

पर ज़ैनब ने तूफ़ान की तरफ़ ध्यान नहीं दिया: उसने बस इस डर से आवाज़ को चीख़ में बदल दिया कि कहीं उसकी बात अनसुनी ही न रह जाये।

"मैं तुम्हें प्यार करती हूं... मैं तुम्हें इतना प्यार करती थी।" वह रोती रही। "मेरा सुख इतना ज़्यादा था कि वह हमारे प्यार के लिये मनहूस हो गया... तुम अपने बच्चे को कभी न देख पाओगे। वह मेरे अन्दर हिल-डुल रहा है, मुझे शान्त करने की, मुझे धीरज देने की कोशिश कर रहा है, मगर सुख़ाई, धीरज तो केवल तुम्हीं मुझे दे सकते थे। मेरी जान, तुम्हारे बिना मैं कैसे जी सकती हूं? मैं कैसे ज़िन्दा रहूं?

घाटी अब मूसलाधार बारिश के शोर से पूरी तरह गूंजने लगी थी। पर जैसा कि पहाड़ों की हर बारिश

में होता है, इस शोर में भी लगता था जैसे क़दमों की ग्राहट, ग्रावाज़ें ग्रौर रोना सुनाई पड़ रहा हो। ग्रौर जल्दी ही इन सब ग्रावाज़ों में पहाड़ के ढाल से दौड़ते नये नालों की ग्रावाज़ें भी शामिल हो गईं।

ज़ैनब के बेचैन दिमाग़ में ग्राज ही सुबह की बातें गूंज रही थीं। दुःस्वप्न ग्रौर सच उसके दिमाग़ में गड्डमड्ड हो गये थे: साक्ल्या जैसे कोई ग्रंधेरी भयानक गुफा हो ग्रौर उसके चारों ग्रोर खड़े होनेवाले लोग हिंस्र पक्षी हों।

"यह हमारे पुरखों का क़ानून है," ज़ैनब की बाज़ जैसी सास उसके चारों ग्रोर हड़बड़ाती घूम रही थी। "जब शौहर मर जाता है, तो उसकी बेवा उसके भाई की हो जाती है। यही क़ानून है, बिटिया, हम इसे तोड़ नहीं सकते। सुख़ाई का एक भाई है: तुम उसकी हो।"

"मैं ऐसा नहीं कर सकती! नहीं कर सकती!" ज़ैनब ने घुटनों पर गिरते हुए मिन्नत की। "मेरी मुहब्बत सुख़ाई के वास्ते थी, ज़करिया के लिये नहीं।"

ग्रब काले कौए-सी एक ग्रौरत ने, जो मौत जैसी ही दुबली-पतली थी, हमला शुरू कर दिया:

"सुख़ाई ग्रब नहीं रहा – ख़ुदा उसे जन्नत बख़्शे! – ग्रौर तुम हमेशा बेवा नहीं सकतीं। उसका भाई ज़िन्दा है ग्रौर तुम्हें उसकी बीवी बन जाना चाहिये।"

"मगर मैं उससे मुहब्बत नहीं करती," ज़ैनब ने सिसकी भरी।

हिंस्र पक्षी कांव-कांव करने लगे ग्रौर उसके सिर पर ग्रपने पंख फड़फड़ाने लगे। तभी उसकी नज़र भयावने, कुरूप, कुबड़े मुग्रज़्ज़िन मुख़्तार पर पड़ी।

"तुम्हारा ग़म ख़त्म हो जायेगा," उसने कर्कश स्वर में कहा। "तुम ज़करिया के साथ रहोगी।"

"तुम्हारे दिल पत्थर के हैं," विक्षिप्त सी बेवा चीखी। "कैसी जल्दी तुम मेरे सुर्ख़ाई को भूल गये। मैं उसे नहीं भूल सकती।"

"कौन कहता है तुम उसे भूल जाओ। बेशक याद रखो तुम उसे। उसके भाई के पहलू में लेटकर तो तुम उसे और भी याद करोगी... ज़करिया के तीन बच्चे हैं, जल्दी ही तुम्हारा भी एक हो जायेगा—और तुम उन सब की मां बन जाओगी। यही तुम्हारी तक़दीर का लेखा है।"

"नहीं, मैं किसी की बीवी नहीं बनूंगी!"

मुर्दाख़ोर कौए हड़बड़ाहट में अपने पंख फड़फड़ाने लगे।

"अगर तुम क़ानून तोड़ोगी तो लोग तुम्हारे बारे में भला-बुरा कहेंगे। और कोई रास्ता नहीं तुम्हारे लिये—तुम इस साक्ल्या को कभी नहीं छोड़ सकती।"

ज़ैनब के धैर्य का बांध टूटने को ही था कि एक ग़ुस्सैल भीमकाय व्यक्ति की आकृति उसके सामने प्रकट हुई। उसका ग़ुस्सा उसकी कुरूप आकृति को अद्भुत सौन्दर्य प्रदान कर रहा था।

"उसे चैन से रहने दो!" ज़करिया ने हुक्म दिया, "तुम लोगों के बिना ही वह काफ़ी भोग चुकी है।" पहली बार और बड़ी नरमी से उसने उसके बाल थपथपाये। "जो तुम्हारे मन में आये करो, ज़ैनब। तुम किसी की ग़ुलाम नहीं हो।"

इसलिये ज़ैनब सुर्ख़ाई से बात करने और अपना दुख उसे सुनाने के लिये साक्ल्या से भागी और चौरास्ते वाली दरगाह पर गई...

गरज की आवाज़ अब दूर से आ रही थी, मगर बारिश अब भी धार बांधे हो रही थी।

"सुर्ख़ाई", ठंडे, गीले पत्थर से लिपटते हुए वह बिलखी। "मैं तुम्हारे भाई की बीवी नहीं बन सकती। मुझे ऐसा करने का हुक्म न दो। मैंने सिर्फ़ तुमसे मुहब्बत की है और मैं अब भी तुम्हीं से मुहब्बत करती हूं। जो बच्चा मेरे पेट में है, वह हमारा बच्चा है, तुम्हारा और मेरा। मैं तुम्हारे नाम पर उसका नाम रखूंगी। मैं उसे पालूं-पोसूंगी और केवल उसी के लिये जियूंगी... मैं ठीक कह रही हूं न, सुर्ख़ाई, बोलो।"

एक तेज़ बौछार आई और चट्टानों पर ओले तड़तड़ाने और छिटकने लगे। अपने बचपन से, जब से वह और सुर्ख़ाई सपाट छत पर ओले इकट्ठे करने का खेल खेला करते थे, अब तक उसने ऐसा तूफ़ान कभी नहीं देखा था। वह यतीम थी और हर किसी–बुज़ुर्ग लोग, पड़ोसी, स्कूल के अध्यापक, उसके सहपाठी–को उस पर तरस आता था और हर कोई इस बात का बड़ा ख़याल रखता था कि उसे ठेस न पहुंचे। हर कोई, यानी, सुर्ख़ाई को छोड़कर। वह उससे वैसा ही बर्ताव करता, जैसा वह औरों के साथ करता, जो कुछ उसके मन में आता उसे कहता, कभी-कभी उसे दिक भी करता और फिर माफ़ी मांग लेता।

बिजली फिर चमकी और गरजी। तूफ़ान वापस आ रहा था। ज़ैनब को ख़याल आया कि स्कूल में लड़कियां बिजली की गरज सुनने पर झूठमूठ कहा करती थीं कि स्कूल का बूढ़ा दरवान लोहे की चादरों वाली छत पर लोहे के बूट पहने दौड़ रहा है। आज फिर वह वैसी ही डर गई, जैसी

उस बूढ़े दरबान से डरा करती थी। वह अपने पूरे ज़ोर से चीख़ी, पर गरज के शोर में उसे अपनी चीख़ भी नहीं सुनाई दी और इस से वह और भी डर गई। क़ब्रों के स्मृति प्रस्तर उसकी आंखों के सामने नाच गये, उसकी बांहें बेजान-सी होकर लटक गईं...और ऐसा लगा जैसे वह किसी गहरी खाई में गिरती जा रही है...

एक घुड़सवार ने, जिसने ज़ैनब की चीख़ सुन ली थी, अपने घोड़े की लगाम खींची और अपने कानों पर ज़ोर दिया। वह उतर गया और जब अगली बार बिजली चमकी, तो उसने एक क़ब्र की जड़ में एक आकृति को गठरी बने पड़े देखा। बड़ी सावधानी से उसने बेहोश लड़की को अपने हाथों में उठाया और घोड़े को लिये-दिये, उसे वापस आऊल की ओर ले चला। जब वह उसे उठाये-उठाये अपने साक्ल्या पहुंचा, तो बेचैनी से उसका इन्तज़ार करती उसकी मां व्यग्रता के साथ बोली: "यह कौन है, हिज़री?"

"चौंको मत, मां। इसे मदद की ज़रूरत है। यह बेहोश है।"

"यह है कौन?"

"ज़ैनब।"

हिज़री ने उसे तख़्त पर लिटा दिया। "हां, ज़ैनब ही है," अपनी भीगी बांह से अपना गीला मुंह पोंछते हुए उसने मन ही मन कहा। इस नाम के साथ ही उसे सुर्ख़ाई से हुई अपनी आख़िरी मुलाक़ात की याद हो आई, जिन दिनों रेवड़ नोगाई स्तेपी की ओर हांके जा रहे थे। जब ज़मुर्रद उसे संभाल रही थी, तब हिज़री ने चोरी-चोरी एक नज़र

ग्रौर उसकी ग्रोर देखा, ग्रपने भीगे बुर्क़े को बरामदे में लगे हिरन के सींगों पर टांग दिया ग्रौर ग्रपने घोड़े पर से ज़ीन उतारने बाहर चल दिया।

बारिश ग्रब भी मूसलधार हो रही थी।

स्कूल के खेल के मैदान को पार करते-करते किस-तमान को ठोकर लगी ग्रौर वह गिर पड़ी। जाने कहां से उसकी बग़ल में कासिम ग्रा पहुंचा—वही कासिम, जो एक ज़माने में किसी "काली ग्रांखों वाली हिरणी" पर कवितायें लिखा करता था। ग्रब वह जानता था कि किस-तमान की ग्रांखें दार्घिन के ग्रासमान की तरह नीली हैं।

उसने उसे उठने में सहारा दिया।

"शुक्रिया!"

"तो तुम... तुम ग्रब जमे पैरों पर चलने वाली पहाड़ी लड़की नहीं रहीं," ग्रटकते-ग्रटकते कासिम बोला। "मेरा ख़याल है तुम ग्रब शहरों की पक्की सड़कों की ग्रादी हो गई हो।"

"ऐसा तो कुछ नहीं। क्या तुम कभी नहीं ठोकर खाते?"

"बेशक, मैं भी ठोकर खाता हूं। हां, याद ग्राया, एक बार..." कासिम को वह घटना याद ग्राई, जब वह बचपन में दादी के तहख़ाने में जा गिरा था। उसने पाया कि वहां क्रीम के घड़े भी पड़े हैं ग्रौर उस घटना के बाद दादी हमेशा कोसा करतीं कि जाने कहां से मेरे तहख़ाने में शैतान ग्रा जाया करता है। कासिम उसे यह बात बताने ही जा रहा था कि उसे महसूस हुग्रा कि यह बड़ी लम्बी ग्रौर उलझी-

सी कहानी है और वह नहीं चाहता था कि किस-तमान उसे बच्चों की तरह बकवासी समझे। इसलिये जब वे साथ-साथ चलने लगे, तो वह अचानक अजीब-सी चुप्पी साध गया।

"हां, तो तुम्हें क्या याद आया?"

"अरे, लम्बी कहानी है, बचपन की... मगर—मगर यह तो बताओ तुम्हें शहर में कैसा लगता है? ऊब तो नहीं गयीं?"

"न!"

"अच्छी बात है। जल्दी ही मैं भी कहीं चला जाऊंगा।"

"मख़चक़ला?"

"अभी कुछ पता नहीं... जहां कहीं वे हमें भेज दें।" कासिम ने चोरी-चोरी कनखियों से किस-तमान की ओर देखा, पर उसके चेहरे से उसके मन की थाह नहीं मिली।

"ये 'हम' कौन है, जिनके बारे में तुम बात कर रहे हो?"

"एक तो मैं ही। ओह, काश तुम भी हम लोगों के साथ चलतीं! लड़के तो बहुत हैं पर उन्हें शिकायत है कि लड़कियां काफ़ी नहीं हैं।"

"मगर यह सब है क्या?"

"सुना नहीं तुमने? हमारी राष्ट्रीय थियेटर मंडली बनने वाली है। उसमें अभिनेताओं की ज़रूरत है, एक पूरी टोली की, ताकि हम सब साथ-साथ तालीम हासिल कर सकें।"

"तो वे लोग तुम्हें अभिनेता बनाने जा रहे हैं?"

"हां, अभिनेता। इसमें क्या कोई बुराई है?"

"नहीं, बहुत ख़ूब! तब तो हमारे दार्घिन का भी अपना थियेटर हो जायेगा?"

"हां। उसका नामकरण बतिराई के नाम पर होगा। और तुम क्या कर रही हो?"

"मैं विश्वविद्यालय में पढ़ाई जारी रख रही हूं।"

"अफ़सोस! हमने तो सोचा था कि तुम हम लोगों के साथ शामिल हो जाओगी... सुना है कि हम लोग प्रशिक्षण के लिये मास्को जायेंगे, या फिर येरेवान के थियेटर इन्स्टीट्यूट में।"

वे अब गांव के छतरीदार सफ़ेद पत्थर के कुएं के नज़दीक पहुंच रहे थे। हमेशा की तरह उस समय भी वहां काफ़ी औरतें अपने-अपने घड़े भरने के लिये खड़ी थीं। औरतों के लिये "घड़ों के कब्रिस्तान" के नाम से मशहूर यह कुआं वैसे ही है जैसे मर्दों के जुटने के लिये गुमाख़ी। यहां काई लगे पत्थरों पर गिरते चश्मे के पानी की कलकल, पहाड़ की ढाल के पानी की धार के घड़े में गिरने की गड़गड़ और पैरों के नीचे टूटते ठीकरों की तड़तड़ाहट की आवाज़ों के साथ-साथ अपनी पारी का इन्तज़ार करती औरतें गपशप, बहस, नोक-झोंक और किल्लपें करती रहती हैं।

"अच्छा, तो अब मैं चलूं, किस-तमान। वैसे भी कुछ लोगों की गन्दी नज़रें मुझ पर पड़ गई हैं और अब किसी भी क्षण वे हमारे बारे में ज़बानें चलाने लगेंगी," कासिम ने अपना हाथ बढ़ाते हुए कहा। "रात को क्लब में आओगी न?"

"तो तुम इन बूढ़ियों की जबानों से डरते हो?" किस-तमान हंसी।

"हां, डरता हूं — डरता हूं कि वे तुम्हारे बारे में कुछ ऊटपटांग न बकने लगें।"

"मेरे किये के लिये तुम क्यों ज़िम्मेदार होगे?"

"फिर भी..."

किस-तमान उसके अनिश्चय पर हंस पड़ी और उससे हाथ मिलाया। "रात को क्लब आने का मेरा कोई तय नहीं। मुझे अपनी सहेलियों से मिलना है... ज़ैनब क्या अब भी ज़मुर्रद चाची के घर ही है?"

"नहीं। सुर्ख़ाई के ख़ानदान वालों ने उससे नाता तोड़ लिया है, पर अब हमारे चेयरमैन—उनकी तक़दीर बुलन्द हो—उसकी देखभाल कर रहे हैं।"

"कहां मिलेगी वह मुझे?"

"उस्मान चाचा के यहां। उन्होंने उसे गोद ले लिया है। अब वह उन्हीं के साक्ल्या में रहती है।"

बोल्शेविक उस्मान ने ज़ैनब को अपने आश्रय में ले लिया था और वह उसे अपनी बेटी की तरह प्यार करने लगा था। उसके आने से सुनसान साक्ल्या में नई ज़िन्दगी आ गई और लगने लगा कि जैसे बूढ़े चाचा की उमर भी पहले से कुछ कम हो गई है...

"ज़ाज़ा चाची!" कुएं के पास पहुंच कर किस-तमान ने आवाज़ दी। "क्या आज मैं आ सकती हूं? नसीबा कैसी है अब?"

"आज कुछ बेहतर है।" उस्मान से जबसे उसकी बात हुई है, तबसे वह यह दिखाने की कोशिश करती रहती है कि वह अपनी "पतोहू" का बड़ा ख़याल रखती है।

"तो फिर मैं शाम को आऊंगी।"

पहाड़ी मेमने की तरह चट्टान से चट्टान पर उछलती किस-तमान ढाल पर उतर गई। वह गांव के बाग़ के पास पहुंची जहां उर्कुंख़ के लोग एक शानदार संस्कृति सदन का

निर्माण कर रहे थे, जो दूसरे आऊलों के लिये ईर्ष्या का विषय था। अपने गांव की किसी भी नई चीज़ से उसे ख़ुशी होती थी और विश्वविद्यालय में वह इन चीज़ों के बारे में इतने गर्व के साथ बात करती थी कि उसका नाम ही "हमारा गांव" पड़ गया था। फिर भी, उसे नई इमारत तो जाना था नहीं, बल्कि बाग़ के उस तरफ़ वाली अपने अब्बा की दूकान पर जाना था, जहां देरबेन्त की बस का अन्तिम स्टेशन था—भला ख़ाली हाथ वह अपने दोस्तों से कैसे मिलती?

"हुंह, ये आजकल की छोकरियां भी," किस-तमान की ओर देखते हुए एक बुढ़िया नाक-भौं चढ़ाकर बोली। "इन्हें तो पुराने ज़माने की तरह पहाड़ की चोटी से ढकेल देना चाहिये... बेहया कहीं की, बिना सिर ढंके इधर से उधर घूमती फिरती हैं। क्या इन्हें नहीं मालूम कि औरतों के बालों से इश्क़ की ऐसी चिनगारियां निकलती हैं, जो मर्दों की आंखों को अपनी गिरफ़्त में ले लेती हैं। यही वजह है कि आजकल के लौंडे इन नये ज़माने की लौंडियों के पीछे घूमते-फिरते हैं। सिनेमा तक वे साथ-साथ जाते हैं—और घूमने भी। सोचो ज़रा—कन्धे से कन्धा भिड़ाकर चलना!"

"पता नहीं कैसा ज़माना आने वाला है," दूसरी बोली। "पुराने ज़माने में तो हम किसी मर्द से बात करने की सोच भी नहीं सकते थे।"

"अरे, रहने भी दो। अगर कोई लड़का-लड़की एक दूसरे से प्यार करते हैं और साथ-साथ घूमने जाते हैं, तो इसमें बुरा ही क्या है?" ज़मुर्रद ने निर्विकार रूप से अपनी

बात कही। "ग्राजकल के नौजवान ग्रच्छे लोग हैं—साफ़ दिल, साफ़ बात करने वाले ग्रौर दूसरे लोगों की तरह वे लोगों से बचते भी नहीं।"

"तुम उन्हीं की वाहवाही मत बखानो," एक बुढ़िया टर्राई। "ये तुम्हारे जैसे ही लोग हैं—वे लोग जिन्हें कुछ तमीज़ होनी चाहिये थी—जो उन्हें बदतमीज़ी करने का बढ़ावा देते हैं।"

"तुम्हारे ग्रलावा ग्रौर कौन है जो यह कहे कि वे बदतमीज़ हैं?" ज़मुर्रद ने ग़ुस्से में पूछा।

किस-तमान के ग्रब्बा ज़ुल्फ़िकार का नाम ग्राया ग्रौर जल्दी ही "घड़ों के क़ब्रिस्तान" में शोर मच गया। पहले तो उन्हें उसके सूग्रर का गोश्त खाने पर ही एतराज़ था ग्रौर फिर उससे भी बुरी बात यह थी कि उसने सरेग्राम यह सलाह दी थी कि कोलख़ोज़ को सूग्रर पालने का काम भी हाथ में लेना चाहिये।

"यही वजह है कि उसकी फिर शादी नहीं हुई—कौन करता उसके साथ शादी?" चटकीले रंग का शाल ग्रोढ़े एक ग्रविवाहित बुढ़िया बोली।

"ग्रपनी गन्दी ज़ुबान को कुछ सुस्ताने दे," दूसरी ने जवाब दिया। "तुम इसलिये नाराज़ हो कि उसने तुम्हें कभी पूछा भी नहीं। वह मेरा रिश्तेदार है ग्रौर ग्रगर तुम उसकी ग्रौर बेइज़्ज़ती करोगी तो मैं ग्रपना घड़ा तुम्हारे सर पर पटक दूंगी।"

कुएं पर दो ग्रौरतें लड़ने लगें तो ग्रल्लाह ही बचाये! जैसे क़यामत बरपा हो गई हो... नहीं, क़यामत नहीं, पर जैसे मुर्ग़े लड़ रहे हों। कभी ग्रापने दो मुर्ग़ों को ग़ुस्से

में एक-दूसरे पर टूटते और गांव की गली में पंख ही पंख उड़ते देखा है? .. नहीं, मुर्गों की लड़ाई भी नहीं। जब लड़ाई पूरे ज़ोरों पर हो, तो ऐसा लगता है, जैसे दो मेढ़े लड़ रहे हों। क्या कभी आपने दो क्रुद्ध मेढ़ों को एक-दूसरे पर टूटते देखा है? और उनके सिरों के टकराने पर खोखली 'क्लोन्क' की आवाज़ सुनी है? .. कौन जाने कि कितने घड़ों के मृत्क-पाल फूटते और उनके टुकड़े युद्धक्षेत्र में फैल जाते, यदि इसी बीच एक औरत एक ऐसी ख़बर लेकर न आ जाती, जिसके कारण हर किसी ने अपने मतभेद भुला दिये। जब उन्हें पता लगा कि छंटनी हुए सिपाहियों से भरी एक लॉरी आई है, तो वे शान्त हो गईं और अपने-अपने घड़े भर कर अपनी-अपनी राह चल दीं। एक बूढ़ी औरत तो अपना ख़ाली घड़ा लिये ही चल दी – इतनी अधीर थी वह अपने भांजे के नागरिक जीवन में लौट आने पर उसका स्वागत करने के लिये।

चौक में जल्दी ही खेतों सी हरी वर्दियां पहने लौटने वाले सिपाहियों के चारों ओर एक हंसते-गाते लोगों का रंगबिरंगा घेरा बन गया। यूं उनका आना एकदम से अप्रत्याशित नहीं था, क्योंकि हर कोई सुन चुका था कि सेना की छंटनी का फ़ैसला हो चुका है। बोल्शेविक उस्मान ने इस मौक़े के लिये एक तक़रीर तैयार कर रखी थी – दस पृष्ठों की – पर अब जब मौक़ा आया, तो उसने कहा कि तक़रीर कौन सुनेगा? सफ़ेद बालों वाले आदरणीय उस्मान चाचा ने लड़कों से गर्मजोशी से हाथ मिलाया और उन्हें अपनी बांहों में भर लिया; और इस खलबली में बहुतेरे लोगों ने उस बुज़ुर्ग की आंखों में आंसुओं की झलक देख कर

यह मान लिया कि सच कहा जाय तो तक़रीर हो गई और कोई ऐसी-वैसी नहीं, बल्कि अच्छी-ख़ासी दिलों को हिला देने वाली तक़रीर। इस टुकड़ी में पास वाले आऊल के लड़के भी थे, पर उस्मान ने सब को एक समान गले से लगाकर उनका स्वागत किया। इनमें से एक था सुलेमान, जिसे सकीनत ने इतने सारे प्रेमपत्र लिखे थे। अगर सकीनत को पता होता कि उसका सुलेमान उस दिन घर वापस आ रहा है, तो वह पैदल उससे मिलने रेलवे स्टेशन गई होती।

तुर्की की सरहद से अपने लम्बे सफ़र भर सुलेमान सकीनत के सपने देखता रहा था। उसका ख़याल था कि अब तक सक़ीनत ने उसकी सलाह के मुताबिक़ दस वर्षीय स्कूल की पढ़ाई पूरी कर ली होगी। ऐसे भी बेवकूफ़ लोग थे जो कहते थे कि वह कोई बहुत ख़ूबसूरत नहीं है, मगर उसके लिये तो वही सबसे अच्छी और सबसे ख़ूबसूरत थी...

पर यहां मुझे सुलेमान के दायें हाथ में हुए घाव के दाग़ के बारे में कुछ बता देना चाहिये। यह घाव उसे तब नहीं लगा था जब वह सरहद पर चौकसी कर रहा था। यह उससे भी पहले की बात है।

एक रात सुलेमान एक साक्ल्या के आसपास मंडरा रहा था, जहां लड़कियों की एक छोटी-मोटी पार्टी हो रही थी। उसने सुना, एक लड़की कह रही थी, "हम लोगों में कौन सबसे बहादुर है?"

"मैं जानती हूं कि किसी न किसी माने में तुम सभी बहादुर हो," सकीनत बोली, "पर क्या तुममें से कोई अभी-अभी अंधेरे में क़ब्रिस्तान तक जा सकती है?"

क़बाब बनाने के लिये गोश्त धोती हुई नसीबा अचरज से मुंह बाये बोली :

"अब इसके बाद तुम क्या सोचोगी, सकीनत? रात में क़ब्रिस्तान कौन जायेगा भला!"

"मैं जा सकती हूं," सकीनत ने इत्मीनान के साथ कहा।

"यूं तो मैं भी चली जाऊंगी," मज़ाक उड़ाते किस-तमान बोली। "मैं बाहर जाऊंगी, वहां कुछ देर खड़ी रहूंगी, फिर वापस आ जाऊंगी और कहूंगी कि मैं क़ब्रिस्तान तक हो आई।"

"ओह, तो तुम्हें मुझ पर एतबार नहीं है?" सकीनत उछल कर खड़ी हो गई। "अच्छा तो, खिड़की में से देखती रहो और तुम्हें क़ब्रिस्तान के पत्थरों की समाधियों के बीच रोशनी दिखाई देगी। उससे तुम्हें पता लग जायेगा कि मैं सचमुच वहीं हूं... नहीं! इससे भी बेहतर–मुझे थोड़ा-सा गोश्त दो, मैं सीक-कबाब वहीं भून लूंगी।"

लड़कियां, जिन्हें अब भी विश्वास नहीं था, ज़ोर से हंस पड़ीं। सकीनत को बुरा लगा। उसने राइफल की नली साफ़ करने की एक लम्बी छड़ ली, उसमें गोश्त के कुछ टुकड़े पिरोये और "बेवक़ूफ़ मत बनो!" "कोई जिघित भी ऐसा नहीं करेगा" की आवाज़ों के बीच लम्बे डग भरती साक्ल्या से बाहर निकल पड़ी। लड़कियां अब भी यही समझ रही थीं कि वह मज़ाक़ कर रही है; केवल किस-तमान जानती थी कि सकीनत ने अगर ज़बान दे दी है, तो अब वह बात पूरी किये बिना वापस नहीं आएगी। इधर

क़बाब तैयार हुए, उधर खिड़की पर खड़ी किस-तमान चिल्लाई: "देखो! वह वहां पहुंच गई!"

लड़कियां खिड़की की ओर दौड़ पड़ीं। क़ब्रिस्तान में एक जगह आग जल रही थी और उसके प्रकाश में समाधि के पत्थर और चिनार के पेड़ों की टहनियां चमक रही थीं। पर खिड़की से देखनेवाले पूरा-पूरा नहीं देख पाये।

सकीनत जब कबाब तैयार करके एक टुकड़ा चख चुकी थी, तभी एक समाधि के पीछे से एक हाथ उसकी ओर फैला और एक आवाज़ आई:

"एक टुकड़ा मुझे भी, हसीना!"

सकीनत रीढ़ तक सुन्न हो गई, पर तभी उसे आवाज़ कुछ पहचानी-सी लगी। अपनी काली भौंहें सिकोड़ते हुए उसने जलती लकड़ी उस हाथ पर दे मारी और कहा:

"यह कबाब ज़िन्दा लोगों के लिये है। तुम्हें तो जन्नत में अपने मन का खाना मिलता ही है।"

एकदम आदमियों की तरह चीखता-चिल्लाता भूत भाग खड़ा हुआ। और उस रात के बाद से सुलेमान के दायें हाथ पर जलने का दाग़ है।

शायद सकीनत की निडरता के कारण ही उसे उससे मुहब्बत हुई है, पहाड़ी रास्ते पर उर्कुख़ से अपने आऊल जाते जाते सुलेमान ने सोचा। लौटने वाले सिपाही को ऐसा महसूस होता है जैसे हर झाड़ी, घास की हर पत्ती, हर चट्टान उसे पहचानती है और नाम ले लेकर उसकी अगवानी कर रही है। हर कोई देख सकता था कि उसे अपने घर-गांव की कितनी याद आती रही है।

जब सकीनत ने सुलेमान की वापसी की ख़बर सुनी तो

वह भागी-भागी उसके घर पहुंची और वहां बैठे लोगों की परवाह किये बिना उसने उसे अपनी बांहों में भर लिया और ख़ूब जी भर कर चूमा।

तुर्की की सरहद पर लंबी सेवा में तपा यह मज़बूत सैनिक भी सिर से पैर तक लाल हो गया।

मुस्तफ़ा की तक़दीर जागी: बुईनाक फलोद्यान की पौदशाला ने उसे शिंचा नामक नाशपाती के मशहूर वृक्षों के कुछ पौधे दे दिये थे। शिंचा के माने हैं रसदार, अगर आप इस क़िस्म की बड़ी, पीली, भूरी चित्तियों वाली नाशपाती का डंठल खींच कर निकाल दें और इस प्रकार बने उसके छेद में मुंह लगा कर चूसें, तो सारा गूदा आपके मुंह में चला आयेगा। आपके हाथ में गड़ुए की-सी शक्ल का खोखला छिलका भर रह जायगा। ख़ुशी में झूमता मुस्तफ़ा ये पौधे अपने सामूहिक फ़ार्म ले आया, हर एक ऐसी सावधानी से लिपटा, जैसे मां ने बच्चे को कपड़ों में लपेट रखा हो।

इन बेशक़ीमत बच्चों को उतरते देखते-देखते मुस्तफ़ा के मन में अचानक सन्देह की एक तेज़ टीस उभरी। इन्हें वह लगायेगा कहां? ज़मीन कहां है उसके पास? न वह जंगल काट कर उसमें दाख़िल हो सकता था और न ही घास के चरागाहों को ही छू सकता था—वे वैसे ही बहुत छोटे थे। यह ज़मीन की कमी भी कैसी मुसीबत है! फिर भी वह उन पौधों को बिना लगाये तो छोड़ नहीं सकता था। अपना सिर खुजलाते हुए उसने उजाड़, नाग पहाड़ की चट्टानी ढलान की ओर देखा।

"अरे ए! सुनो, मत उतारो!" वह ज़ोर से बोला। "और जो उतार लिये हैं उन्हें वापस चढ़ा दो। हमारे पास इन्हें रोपने की जगह ही नहीं है... हम इन्हें अपने पड़ोसियों को दे देंगे। उस्मान के पास चश्मों की घाटी में थोड़ी सी जगह ख़ाली है।"

"ज़रा इनकी सुनो!" अपनी छाती से एक पौधे को बच्चे की तरह सटाये सकीनत ग़ुस्से के मारे ज़ोर से बोली। "तो फिर इन्हें यहां तक लाने की ज़रूरत ही क्या थी? क्या यह दिखाने के लिए कि कितने ख़ूबसूरत नन्हे-नन्हे पौधे हैं?"

"चीखो मत, याद रखो कि तुम किससे बात कर रही हो।"

"सामूहिक फ़ार्म के चेयरमैन से! .. लड़कियो, सुना तुमने, यह क्या कह रहे हैं? अभी तो 'जन्नती नाशपातियों' की वाहवाही बखान रहे थे और अभी 'अरे, ठीक है! हम इन्हें अपने पड़ोसियों को दे दें।' हमारे बिचारे पड़ोसी, च्च-च्च!"

"मगर, रानी बिटिया," मुस्तफ़ा ने इतनी नर्मी से कहा कि शुबहा होता था। "हमारे पास इन्हें रोपने लायक जगह भी तो नहीं है। तुम जानो, ये कोई छतों पर तो उगेंगे नहीं।"

"है क्यों नहीं जगह?" सकीनत ने नाग पहाड़ की ढलान की ओर इशारा करते हुए कहा। उन्त्सुकुल वाला फल बाग़ तो आपने देखा है, है कि नहीं? जड़ें ज़मीन को बाहों की तरह मज़बूती से पकड़ लेती हैं। धरती पेड़ों को थामे रहती है और पेड़ धरती को थामे रहते हैं... अरे लड़कियो, तुम भी बोलो न!"

"किस तरह चिल्लाती है यह—ग्रौर सो भी अपने बाप पर," अपनी मूंछों जैसी भौंहें सिकोड़ते मुस्तफ़ा ने सोचा। ठीक है, ज़रा घर चलें, तब वह दूसरी ही तरह बात करेगी! .. मगर यह तो देखो कि इसने कितनी भीड़ जुटा ली है... जब खिड़कियां धड़धड़ाने ग्रौर दरवाज़ चरमराने लगें, तो फ़ौरन तमाशबीनों की भीड़ जमा हो जाती है।

"बस!" उसने गुस्से का सुंदर अभिनय करते हुए कहा। "अपने टीम-लीडर को मेरे पास भेज दो। मैं उससे कहूंगा कि वह तुमसे ज़मीन ढुंढवाये ग्रौर ये पौधे रोपवाये, ग्रौर अगर एक भी पौधा मारा गया, तो तुम्हारा अल्लाह ही हाफ़िज़ है।"

"यह मत समझिये कि आप हमें डरा लेंगे! .. ग्रौर अब्बा, आप फ़िक्र न करें।" सकीनत ने अपनी बांहें मुस्तफ़ा के गले में डाल दीं ग्रौर उसका गुस्सा वैसे ही उड़ गया जैसे धूप में कुहरा। फिर भी, अपनी लड़की से, जिसके चारों ग्रोर ग्रौर लड़कियां ख़ुश-ख़ुश जुट गई थीं, बातें करते हुए वह अपनी आवाज़ में कड़ापन बनाये रहा। साथ ही साथ जिस चालाकी से उसने चुपके से उनके उत्साह में चिनगारी फूंक दी थी, उस पर वह मन ही मन अपने को शाबाशी दे रहा था। अब वे इतने जोश में थीं कि पहाड़ को भी उलट देतीं। यह कोई अचरज की बात नहीं जो लोग कहते हैं कि आजकल चट्टानों से भी फूल खिलवा किये जाते हैं! ..

सकीनत के दल के जिम्मे, जो फ़ार्म की एक टीम का हिस्सा था, बड़ा मुश्किल काम किया गया था, पर दल के लोग उसके लिये कुछ भी करने को तैयार थे। स्कूल के बाद

उसने एक अनुभवी टीम-लीडर की देख-रेख में फलों की बाग़बानी की व्यवहारिक तालीम हासिल की थी और उसे अच्छी तरह मालूम था कि उससे क्या अपेक्षित है। उन्हें ढलान की ज़मीन से पत्थरों और जंगली गुलाब और झरबेरी की झाड़ियों को साफ़ करना था, इन पत्थरों अथवा खम्भों के सहारे बाड़ें बनानी थीं, ताकि मिट्टी न बहे; बाड़ें बनाने के बाद उनके पीछे ज़मीन तैयार करनी थी–वहां मिट्टी न हो, तो नदी के पास की सैलाबी मिट्टी टोकरी-टोकरी लानी थी– और उसमें गोबर की या रासायनिक खाद देनी थी। तब कहीं वे उन पौधों को ऐसे रोप पाते, जैसे सिपाहियों की टकड़ी मार्च कर रही हो...

सकीनत इन दिनों काम के वक़्त भी अपने बनाव-सिंगार का ध्यान रखती थी, क्योंकि कौन जाने सुलेमान कब-कहां मिल जाये!

वह उससे मिला ज़रूर, पर संयोगवश ही नहीं।

सुलेमान ने, जो अब मक्का के खेत में दल-नायक था, अपना काम जल्दी ख़त्म कर दिया था। चांदनी छिटकी हुई थी और हर बात उस चीज़ के पक्ष में थी, जिसे पहाड़ी लोग "खिड़की तले खांसना" कहा करते हैं। बिना कोई नतीजा हासिल किये वह देर तक खांसता रहा; आख़िर मस्तफ़ा बरामदे में आया।

"अपने गले को न थकाओ, बरख़ुरदार। वह यहां नहीं है। नाग पहाड़ पर है।"

हड़बड़ा कर माफ़ी मांगता हुआ सुलेमान पहाड़ की ओर चल दिया। वहां उसने पाया कि सकीनत और उसकी टोली अब भी काम में लगी है।

इसका लेखा-जोखा कहीं नहीं है कि उस जादू भरी चांदनी में, जो हर उस चीज़ को जिसे वह छूती है रुपहला बना देती है, पौ फटने तक घूमते-घूमते दोनों प्रेमियों ने क्या-क्या बातें कीं, — मगर सुबह सुलेमान जब लाल तारे का तमगा छाती पर लगाये मुस्तफ़ा के घर पर हाज़िर हुआ, तब उसमें नाम को भी झिझक न थी।

"कॉमरेड चेयरमैन, बाजे वाले कितने होंगे? और कब? मैं चाहता हूं कि यह शादी अव्वल दर्जे की हो।"

अपनी निंदासी आंखें मलती सकीनत अपने कमरे से बाहर आई और उसने अपनी बात जोड़ी:

"और अगर आप जल्दी नहीं करेंगे, तो मैं ग्रुपलीडरी से इस्तीफ़ा दे दूंगी।"

"सचमुच?" मुस्तफ़ा ने अपनी बेटी को घुड़का, जो सिर ढंके बिना ही किसी आदमी के सामने चली आई थी। फिर उसने अपना ग़ुस्सा सुलेमान पर उतारा, जिसने उसे सोते से जगाने की जुरअत की थी — और अब तय था कि सिरदर्दी होकर रहेगी। उसने ग़ुस्से के साथ सकीनत को जाने और ठीक से कपड़े पहनने को कहा और वह चली गई।

"बरख़ुरदार, तुम जानते हो कि तुम्हारी तरफ़ से ये सब बातें किसी और को चलानी चाहिए। मां-बाप कहां हैं तुम्हारे?"

"वे घण्टों पहले काम पर चले गये। और फिर, मैं किसी और का सहारा क्यों लूं? शादी उनकी नहीं, मेरी होनी है।"

क्या क़िरदार है! मुस्तफ़ा ने सोचा। बिलकुल मेरी लड़की की तरह। "अच्छी बात है, तमग़ेवाले बरख़ुरदार,

बैठो... उम्-हां...तो बात यही है न कि तुम शादी के लिये मेरी बेटी का हाथ मांगने यहां आये हो?"

फ़ौजी अंदाज़ में सुलेमान ने जवाब दिया: "बिल्कुल ठीक, कॉमरेड चेयरमैन।"

"हु-म्... अब मुझे यह बताओ: क्या यह कहा जा सकता है कि अपनी ज़िन्दगी के दौरान तुमने काफ़ी क़िस्से-कहानियां पढ़ी हैं?"

दरवाज़े के पीछे से सकीनत ने अन्देशे में नाक सुड़की। उसके अब्बा जब क़िस्सों-कहानियों, परीकथाओं और दन्तकथाओं की बात छेड़ बैठें, तो समझ लेना चाहिए कि दाल में कुछ काला है।

"हां, मुस्तफ़ा-चाचा, अपने वक़्त में मैंने काफ़ी पढ़ी हैं और सुनी भी काफ़ी हैं।" एक विनम्र मुस्कुराहट के साथ हैरान नौजवान ने जवाब दिया—जो इस विचार के आने के साथ ही तुरन्त मिट भी गई कि अब यह कहेंगे कि मैं नई उमर का ख़्वाब देखने वाला हूं और मेरे दिमाग़ में दुनिया भर की ऊलजलूल बातें भरी हैं।

"और अब मुझे बताओ, बरख़ुरदार: जितनी भी कहानियां तुमने पढ़ी या सुनी हैं, उनमें कहीं कोई ऐसी भी कहानी आई है, जिसमें राजा ने अपनी बेटी महज़ मांगने पर ही दे दी हो? जवाब दो मुझे इसका!"

सुलेमान और भी चक्कर में पड़ गया, बोला: "नहीं; मुस्तफ़ा-चाचा, मुझे तो ऐसी कोई कहानी याद नहीं।"

"और क्यों नहीं? मैं बताऊं तुम्हें... इसलिये कि इस तरह की कोई कहानी है ही नहीं। और क्या तुम समझते हो कि सामूहिक फ़ार्म का एक ख़ुददार चेयरमैन जो कोई

भी पहला आदमी आये उसी के हाथ में अपनी बेटी का हाथ थमा देगा?" नौजवान पर अपनी सख़्त नज़र गड़ाये उसने सख़्ती से कहा, "तुम्हें उसे जीतना पड़ेगा।"

"उसे जीतने के लिये मुझे क्या करना होगा, चेयरमैन साहब?" सुलेमान अब फिर जोश में आ गया था। "क्या अजगर अज्दहा को मार लाना होगा? मुझे इतना भर बता दीजिये कि आजकल वह कहां रह रहा है और मैं आपके सामने उसका सर हाज़िर कर दूंगा। या जादुई घोड़े किरात को पकड़ लाऊं? या फिर आबेहयात खोज लाऊं, जो क़ब्र के मुर्दों को ज़िन्दा कर देता है?"

"ये सब पुरानी बातें हो गईं, बरख़ुरदार। हर तरह के अजगर हमें महज़ चीनी रेशम या चीनी-मिट्टी के बर्त्तनों पर मिल जाते हैं। और हमारे चरागाहों में ऐसे घोड़ों की कमी नहीं है, जो किरात को पहले दौड़ने की छूट दे कर भी मात दे दें। और रही बात आबेहयात की, तो उर्कुख़ में एक रोगनाशक चश्मा है। जाओ और उसमें नहाओ, या फिर, तुम्हारी मरज़ी हो तो, ताल्गी स्वास्थ्यगृह के सोते में जाकर डूबकी मार लो।"

चोरी-चोरी बातें सुनने के फेर में सकीनत का दरवाज़े पर काफ़ी ज़ोर पड़ गया। वह फटाक् से खुल गया और वह लड़खड़ाती हुई क़रीब-क़रीब गिरती-सी कमरे में आ गई।

"बिचारी नाक को चपटी मत करो," ख़ैरख़्वाही भरे लहजे में मुस्तफ़ा ने कहा। "ख़ैर... अब यहां आ ही गई हो, तो फिर यहीं रहो।"

सकीनत के अचानक ही आ टपकने से हड़बड़ाया सुलेमान

हकलाते हुए बोला: "अच्छा, तो मुस्तफ़ा-चाचा, क्या करना होगा मुझे ?"

अपनी लड़की पर तेज़ नज़र डालते हुए मुस्तफ़ा ने पूछा: "हमारे यहां के सबसे मशहूर मक्का उगाने वाली बाख़ू के वारिस को जानते हो? उसका नाम है उमलात।"

"वही, जो अपनी शादी से भाग निकला और अपनी बीवी अपने मां-बाप के पास छोड़ गया ?"

"वही, वही। पर उससे मुझे कोई वास्ता नहीं। मैं दूसरों के दिली मामलों में अपनी नाक नहीं घुसेड़ता। वह कहां गया और क्यों गया, इससे मुझे कोई मतलब नहीं। मुझे चाहिये उस जैसा मक्का उगाने वाला—और यही तुम्हें कर के दिखाना है," आख़िरी फ़ैसला सा करते मुस्तफ़ा उठ खड़ा हुआ।

"मुझे ?"

"अक्खाह् !.. डर गये ?"

"मैं आसानी से डरने वाला नहीं। और फिर इसमें डरने की बात ही क्या है ?"

"यही कि मेरी बेटी का हाथ जीतने का इसके सिवा कोई चारा नहीं। फ़िलहाल अगर तुम फ़ी पौधा चार भुट्टे भी उगा सके, तो वह तुम्हारी है। अगर ऐसा नहीं कर पाये, तो ग़लती भी सिर्फ़ तुम्हारी ही होगी।"

सकीनत ने व्यग्रता से सुलेमान की ओर देखा। वह उसे दिलासा देते हुए-सा मुस्कराया।

"सकीनत के लिये मैं फ़ी पौधे छः उगाऊंगा।"

"ख़ूब, तो फिर तय रहा!" बात पक्की करने के लिये मुस्तफ़ा ने सुलेमान से हाथ मिलाया। "और अब,

जनाब सुलेमान साहब तशरीफ़ रखिये... सकीनत, खाना लगाओ।"

"अभी, अब्बा!" वह बाहर बरामदे की ओर भागी, जहां उसकी मां ने, हमेशा की तरह, घर से बाहर जाने से पहले नाश्ते की चीज़ें रख छोड़ी थीं।

"जब तुम अपना वादा पूरा कर चुकोगे," मुस्तफ़ा ने शराब उंड़ेलते हुए कहा, "तब भी बाजे वालों की गिनती के बारे में सोचने-विचारने का काफ़ी समय रहेगा। समझे, बरख़ुरदार, मैंने दूसरे फ़ार्मों के चेयरमैनों के सामने इक़रार किया है कि यह फ़ार्म मक्का उगाने में अव्वल रहेगा। और एक पहाड़ी की ज़बान की क्या क़ीमत होती है, यह मुझे तुम्हें बताने की ज़रूरत नहीं!"

सकीनत नाश्ते का थाल अन्दर ले आई और मेहमान को एक नैपकिन दिया।

"हां, कॉमरेड चेयरमैन, जैसा कि आपने कहा, तब भी काफ़ी समय रहेगा। ज़ल्दबाज़ी तो वह कर रही है।" उसने सकीनत की ओर इशारा किया और बदले में एक घुड़की भरी नज़र पाई। "मैंने कहा न था तुमसे, सकीनत, कि यह साबित करने के लिये कि मैं तुम्हारे लायक हूं मुझे तुम्हारे अब्बा को कुछ कर के दिखाना पड़ेगा?"

"यह बात हुई, बरख़ुरदार। तुमने देश के लिये अपनी योग्यता साबित की और उसका इनाम पाया। यही मेरे साथ भी करो... और इसने तो ख़ुद अभी अपना वादा भी पूरा नहीं किया है।"

"कल हम पौधों की छंटाई करेंगे," अपने अब्बा का तात्पर्य भली प्रकार समझते हुए सकीनत बोली। उसने उसके

उस इशारे को भी ठीक-ठीक समझ लिया था, जिसमें उससे बाहर जाने और "मर्दों की बातचीत" में अब और न पड़ने के लिये कहा गया था और उसके मुताबिक़ चली आई।

उसके कमरे से जाते-जाते उसके पांचों भाई – जो सब के सब चरवाहे थे – अपने बुर्क़े बरामदे में उतार कर अन्दर आये। उनमें से हर एक दूसरे से ताक़तवर और मज़बूत लग रहा था। पहाड़ की ताज़ी हवा और खिन्कल – दूध और गोश्त का रसा जो चरवाहों का मुख्य आहार है – का उन पर अच्छा ख़ासा असर था।

मुस्तफ़ा ने अपने लड़कों को मेज़ के चारों ओर बैठाया और उन्हें सुलेमान और सकीनत के रिश्ते की ख़बर सुनाई। लड़कों ने अपने बाप के फ़ैसले की ताईद की।

तो ऐसा है यह ख़ानदान, जिसमें मेरी शादी हो रही है! पांच लम्बतड़ंग जवानों को देखते हुए सुलेमान ने सोचा। अगर मैंने उससे कुछ अनुचित बर्त्ताव किया, तो अल्लाह ही ख़ैर करे। अब मैं समझा कि वह इतनी निडर क्यों है। ऐसे भाइयों के होते वह और होती भी क्या?..

आने वाले दिनों में सकीनत की आवाज़ में तराने सुने जा सकते थे – घर में भी और नाग पहाड़ पर बढ़ रहे नाशपाती के किशोर वृक्षों की क्यारियों के बीच भी। पर हर गीत ख़ुशी का ही न होता, क्योंकि किसी जवान लड़की की ज़िन्दगी में उस अज़ीमुश्शान दिन के कभी न ख़त्म होने वाले इन्तज़ार से बढ़कर थका देने वाला और कुछ नहीं होता.... एक पुराने लोकगीत में अपने शब्द पिरोते हुए वह गाती:

दिन लम्बे, रातें भी लम्बी
दिल को चैन न आये।

इकलौते चुज़े पर जैसे मुर्गी जान छिड़कती है
वैसे अम्मां मेरे आगे-पीछे आये-जाये।

घूर रहे क्यों मुझ को ऐसे,
तुम क्यों देर लगाते?
प्यारे भाइयो, जाओ जाकर सुध लो अपनी भेड़ों की
भटकी भेड़ नहीं हूं, मुझ पर क्यों तुम नज़र टिकाते?

चिन्ता करे फ़ार्म की अब्बा, वह ही उसे सम्भाले!
मैं तो केवल इतना चाहूं प्यार भरी बाहों को कोई
आन गले में डाले।
अपना मुझे बना ले।।

हिज़री नाटे क़द का था, गो उसका बाप अच्छा-ख़ासा भीमकाय आदमी था। शायद बहुत छोटी उम्र में ही पिता के मर जाने और युद्ध के कठिन वर्षों ने उसकी वृद्धि पर असर डाला था। बाद में ही अपनी मां से सुनी कहानियों में खिंचे चित्र से वह अपने पिता को प्यार करने लगा था। लड़का भला-चंगा बढ़ निकला और अपनी उभरती उम्र में जहां वह अपने कपड़ों का ख़याल रखता था, वहीं "छैल-छबीलेपन" से घृणा भी करता था। शुरू से ही उसे घोड़ों का बड़ा शौक था—और महज़ घुड़सवारी का ही नहीं, क्योंकि वह हरदम किसी घोड़े के नज़दीक होने का मौक़ा पाने के लिये लड़कपन के खेल छोड़ने को तैयार रहता... वह हमेशा से ख़ुशमिज़ाज था और ज़मुर्रद बड़े अभिमान के साथ बताया करती थी कि उसने उसे कभी रोते-झींकते नहीं देखा। वैसे गुमाख़ी की जमघट से छोटे बच्चों को भगा

दिया जाता था, पर यह शरीफ़ ग्रौर नेकचलन लड़का एक ग्रपवाद था। वह घंटों इन बड़ों के बहस-मुबाहसे ग्रौर क़िस्से-कहानियां सुनता रहता ग्रौर ग्रक्सर उसका मज़ाक़ उड़ाया जाता कि वह जल्दी से जल्दी बड़े हो जाने के फेर में है, पर वह उनकी बातों में ख़ूब दिलचस्पी लेता ग्रौर वहां बैठे-बैठे बातें सुनने में उसे बड़ा इत्मीनान मिलता।

ग्रपनी मां को वह इतना चाहता था ग्रौर उसका बोझ कम करने की उसकी इतनी तमन्ना रहती थी कि स्कूल पूरा करने के बाद उसने ग्रपनी ग्रागे की पढ़ाई छोड़ दी। पिछले दो बरस से वह गांव के क्लब में काम कर रहा था। जब यह ऐलान किया गया कि नये राष्ट्रीय थियेटर के लिये ग्रभिनेताग्रों की ज़रूरत है, तो हिज़री ने ग्रपनी मां की सलाह पर दरख़्वास्त दे दी। ग्रब तक उसका कोई जवाब नहीं ग्राया था।

ग्राम पहाड़ियों की तरह हिज़री भी धूम्रपान नहीं करता था। यही नहीं, वह हलकी शराब से तेज़ कोई चीज़ पीने से इनकार कर देता था। इस मामले में पार्टियों में प्रायः ऐसे लोग उसका मज़ाक उड़ाते, जो कहते: "बिल्कुल ठीक, बेटा। मेरी बीवी भी कभी वोद्का नहीं छूती!" पर कभी-कभी मजबूरी में एकाध गिलास वह ले लिया करता था। ग्रपनी ख़ुशमिज़ाजी ग्रौर हाज़िरजवाबी के कारण हर पार्टी में उसका ग्राना पसन्द किया जाता—पर उमलात की शादी से पहले तक ही!

दो दिन पहले हिज़री ग्राऊल में ग्राख़िरी बार नज़र ग्राया था ग्रौर ग्रब कोई नहीं जानता था कि वह कहां है। ज़मुर्रद परेशान थी—पर किसी मां का दिल हर परेशानी से

मुक्त होता ही कब है? बच्चे जब किशोरावस्था को पहुंचने लगते हैं, तो वह उस घड़ी का इन्तज़ार करने लगती है, जब वे अपनी फ़िक्र आप करने के कुछ और लायक हो जायेंगे, मगर तब, शायद, वह बड़े अफ़सोस के साथ कहेगी: "छोटों के साथ छोटी परेशानियां, बड़ों के साथ बड़ी।"

ऊंची पहाड़ी सड़क पर, उन बादलों से ज़रा नीचे, जिन पर डूबते सूरज ने सोने के पानी का मुलम्मा चढ़ा रखा था, ज़मुर्रद को एक घुड़सवार की-सी आकृति दिखाई दी। अपनी आंखों पर ज़ोर दे कर उसने घोड़े को पहचान लिया और इत्मीनान की सांस ली। वह बरामदे के जंगले पर से हट आई और हाथ में अख़बार ले कर कुर्सी पर पड़ रही—अपनी परेशानी वह अपने बेटे को नहीं मालूम होने देगी।

हिज़री सरपट घोड़ा दौड़ाता आंगन में आया, उतरा और उसने पड़ोसी के लड़के को बुलाया, जिसे वह हमेशा अपना काठीदार घोड़ा सौंपा करता था। काठी के उभरे हुए आगे वाले हिस्से के सहारे झूल रहे थैलों और ज़ीन को उतारते उसने लड़के से कहा: "इसका ठीक से ख़याल रखना। ख़ूब आराम देने के बाद इसे टहलाने के लिए रात में चराने ले जाना।"

"अच्छा, भैया," लड़के ने ख़ुशी-ख़ुशी घोड़े को आंगन से बाहर ले जाते हुए जवाब दिया।

बांहों में थैले लटकाये वह दौड़ते-दौड़ते सीढ़ियां चढ़ मां के सामने जा पहुंचा।

"कोई नई बात, मां?"

"इस अख़बार में तुम्हारे बारे में कुछ लिखा है – अपनी वार्ताओं में देश के बारे में जानकारी देने के लिए और उन फ़िल्मों और अख़बारों के लिये, जो तुम उनके लिये लाते हो, चरवाहों और ग्वालिनों ने तुम्हारा शुक्रिया अदा किया है।"

हिज़री ने जैसे सुना ही नहीं, इसलिये ज़मुर्रद ने अख़बार नीचे रख दिया। "मुझे यक़ीन है तुम शिकारी की तरह भूखे होगे... अरे, नहीं – चरवाहों के साथ रहते तुम कभी भूखे रह ही नहीं सकते।"

"मां, क्या तुम... क्या तुम उनके यहां गई थीं आज?"

"मैं परसों गई थी उनके यहां। पर आज मेरे पास उनके यहां ले कर जाने को कुछ था नहीं और बीमार के घर ख़ाली हाथ जाया भी कैसे जाय... उसे बर्फ़ की ज़रूरत है पर वह मिले कहां? कहते हैं कि पुराने ज़माने में अपनी जान की परवाह न करने वाले लोग बर्फ़ के लिये दूर के पहाड़ों की चोटियों पर चढ़ जाया करते थे।"

"आज उसके यहां जाओ, मां।" हिज़री ने झोले से एक पोटली निकाल कर अपनी मां को दी।

"यह तो ठंडी है!" उसने अचरज से कहा। "बर्फ़ है क्या? कहीं ऐसा तो नहीं कि तुम..." वह बोलते-बोलते रुक गई और उन दूर के ग्लेशियरों, ख़तरनाक रास्तों, मौत के से सन्नाटे और चोटियों से जूझते अपने बेटे की तस्वीर उसकी आंखों में घूम गई, जो उस लड़की के लिये बर्फ़ लेने गया था, जो सदा-सदा के लिये उसके दिल में समा गई थी। किसी वजह से ज़मुर्रद के दिमाग़ में यह नहीं आया कि द्युल्तिदाग ग्लेशियर जाने के बजाय हिज़री सीधे-सीधे आसानी से शहर के बर्फ़ के कारख़ाने से भी बर्फ़ ला सकता था।

"इसे उसके पास ले जाओ, मां।"

"अरे, मेरे बेटे, क्या लोग तरह-तरह की बातें नहीं करने लगेंगे?" ज़मुर्रद ने परेशानी ज़ाहिर करते हुए कहा—फिर तुरन्त उसे अपनी कमज़ोरी के इज़हार पर अफ़सोस हुआ।

"यह मत बताना कि कौन लाया है। या कह देना कि चोटी पर से कोई मिलने वाला आया था, वही लेता आया। और जब उसके पास तुम्हारे सिवा कोई न हो, तो उसे यह पुर्ज़ा दे देना।"

"कितनी तकलीफ़ उठाई है तूने, मेरे बेटे।"

"मुझे उससे मुहब्बत है, मां... जल्दी जाओ—आधी बर्फ़ तो यहां आते-आते रास्ते ही में गल गई... कौन जाने, इस पुर्ज़े से मैं उसकी तकलीफ़ कुछ बढ़ा ही रहा होऊं।"

"नहीं, मेरे लाल। इसे उस तक पहुंच ही जाने दे... मैं उसे सब कुछ बता दूंगी।"

"नहीं, नहीं। वह पढ़ेगी, तो ख़ुद समझ जायगी। और अगर वह इसे फाड़ फेंके—ख़ैर, वही सही! मैं फिर भी उससे मुहब्बत करता रहूंगा।"

"मैं चली अब। तुम कुछ खा-पी लेना।"

पर भूख के बावजूद हिज़री खा नहीं सका। वह बेचैनी से खिड़की और दीवार के बीच चहलक़दमी करता रहा।

अपनी मां के क़दमों की आहट पाते ही वह दौड़ा-दौड़ा दरवाज़े तक गया और उसकी आकृति से हाल का अन्दाज़ लगाने की कोशिश करने लगा। ज़मुर्रद का बुझा-बुझा और उदास चेहरा देख वह तुरन्त पूछ बैठा:

"बताओ न! क्या उसकी तबीयत ज़्यादा ख़राब है?"

"हां, मेरे बेटे। मैंने बर्फ़ दे दी, पर उसे पुर्ज़ा नहीं दे सकी। यह रहा... मैंने उनसे कहा कि नसीबा को शहर के अस्पताल ले जाना चाहिये, मगर ज़ाज़ा अड़ी रही: 'नहीं, अगर उसे मरना है, तो यहीं मरे। जानते हैं हम इन डाक्टरों को...' अब ऐसी औरत से कोई कुछ कहे भी क्या?"

"पर वह यहां मर जायगी, मां।"

"कमरा लोगों से भरा था, सभी सुबक रहे थे, नसीबा भी रो रही थी। जब उसने मुझे देखा, तो उसका चेहरा दमक उठा और उसने कहा: "आओ, हिज़री की मां, आओ, मेरे पास बैठो..." वह मुझे अपने पलंग के पास बैठाये रही और जब मैं आने को हुई तो वह मुझसे रुकने के लिये बार बार कह रही थी।"

"हमें उसे उनके शिकंजे से छुड़ाना है। मां, तुम कम्युनिस्ट हो कर भी रिवाज के नाम पर उसे मर जाने दोगी?"

"बेशक मैं ऐसा नहीं होने दूंगी। मैं ग्राम सोवियत के पास जाऊंगी। भले ही हमें मिलिशिया (नागरिक सेना) की मदद लेनी पड़े, पर उसे बचाना ही होगा।"

"उस्मान-चाचा के पास जाओ। उसे बचाओ, मां। भले वह कभी मेरी न हो सके, फिर भी... उसकी आवाज़ तो सोचो ज़रा! ऐसी आवाज़ कभी किसी की नहीं थी।"

हिज़री आज़िज़ी से अपनी मां की तरफ़ देखने लगा, ऐसी नज़रों से, जिनसे वह बचपन में तब देखा करता था, जब उसे एतबार था कि ऐसा कुछ नहीं है, जो उसकी इस मां के बस का न हो।

ज़मुर्रद बिना कुछ कहे तेज़ी से साक्ल्या के बाहर चल दी।

पुराने ज़माने से एक ऐसा विश्वास चला आ रहा है कि कुहरा जहां से पैदा होता है, फिर वहीं वापस जाता है और लगता है कि चक्कीवाले की दर्रानुमा घाटी कुछ ऐसी ही जगह है। यहां कपड़े धोने के टब की सफ़ेद और गाढ़ी झाग-सा कुहरा घने गोल बादलों की शक्ल में घूमता और चक्कर काटा करता है। सुबह का सूरज हलके ऊन के गालों-से बादलों के बीच से रह रह कर चमक रहा था।

ज़मुर्रद अपना घोड़ा लिये चौक में आई। गांव ऐसा लग रहा था, जैसे सब छोड़ कर चले गये हों। कटाई शुरू हो चुकने के कारण केवल बूढ़ी औरतें या छोटे बच्चे ही दिखाई दे रहे थे। हसन के बाड़े को छोड़ कर, जहां ज़ाज़ा एक दीवार की मरम्मत में जुटी थी, कहीं कोई हलचल नज़र नहीं आ रही थी।

"ज़ाज़ा!" ज़मुर्रद ने उसे बुलाया। "मैं शहर जा रही हूं और मुमकिन है, अस्पताल में नसीबा से मिलने का बन्दोबस्त भी हो जाये। तुम्हें कुछ कहलाना है?"

"अगर उसे मेरे रहम की ज़रूरत होती, तो वह घर पर ही रहती और यह रट न लगाये रहती, 'मुझे अस्पताल भेज दो,'" उसकी ओर मुंह घुमाये बिना ही ज़ाज़ा बोली। "नहीं, मुझे उसे कुछ नहीं कहलाना।"

अपने आप को कोसती हुई कि वह ज़ाज़ा से बोली ही क्यों, ज़मुर्रद घोड़े पर बैठ कर आगे बढ़ गई...

पहले मैं अपने बेटे की ख़्वाहिश ही पूरी करूंगी, ज़मुर्रद ने सोचा, इसलिये जब वह शहर पहुंची तो स्तूपाकार चिनारों की क़तारों से घिरी अस्पताल की ओर जाने वाली

सड़क पर मुड़ गई। उतर कर उसने कुछ दूरी पर कुछ लोगों का एक झुण्ड देखा जिसमें से कुछ लोग तो साफ़-साफ़ डाक्टर या नर्स थे और दूसरे मरीज़ थे, जो लगता था किसी को विदाई दे रहे थे। फिर एक दुबली-पतली पीले चेहरे वाली लड़की एक पोटली लिये उस झुण्ड से अलग हुई और ज़मुर्रद की ओर मुड़ी।

"नसीबा!"

"तुम मेरे पास आई हो, हिज़री की मां?!"

"हां, मेरी बिटिया, मेरी रानी। मगर..?"

"हां, अब मैं बिलकुल ठीक हूं। मुझे अस्पताल से छुट्टी मिल गई है।" नसीबा ने ज़मुर्रद को अपनी बांहों में भेंट लिया। "मैं तुम्हें बहुत याद करती थी—पूरा एक हफ़्ता हो गया। कल उन्होंने बताया कि कोई मिलने आया है तो मैंने सोचा तुम्हीं होगी। वह अब्बा निकले। बेचारे अब्बा, वह मेरे लिये बुरी तरह से परेशान थे।"

"मैं कल ही आना चाह रही थी, मगर हिज़री..."

"क्या मतलब कि वह तुम्हें नहीं आने दे रहा था?"

"नहीं, नहीं। वह तुम्हें एक किताब भेजने के फेर में था और तभी तूफ़ान आ गया और उसने मुझे उस हालत में आने नहीं दिया।" काठी के झोले से किताब निकाल कर उसने नसीबा को दी।

"शुक्रिया। मैं इसे घर लौटते हुए रास्ते में पढ़ूंगी। जब मुझे यहां लाया जा रहा था, तो मैं सोच रही थी कि अब आख़िरी बार आसमान देख रही हूं, और, ओह! मैं कितना चाहती थी कि न मरूं... और यहां बिस्तर पर लेटे-लेटे यह सोचते हुए कि मैं मर रही हूं, मैंने महसूस किया कि मैंने

अपनी बेवकूफ़ी से अपनी ज़िन्दगी का सत्यानाश कर डाला है। पर अब मैं बदल गई हूं। अब से मैं किसी की जायदाद नहीं होने की।"

"तुम्हें ऐसी बातें कहते सुन कर मुझे ख़ुशी होती है—आख़िरकार!"

"कल अब्बा ने कहा था: अपना रास्ता ख़ुद चुनो, बिटिया... अच्छा, तो चलूं... आज तुम्हारा कोई अध्यापकों का सम्मेलन है, है न?"

"क्या मतलब कि तुम पैदल जाओगी?"

"अब्बा ने कहा था कि वह कोई लॉरी भेजने की कोशिश करेंगे।"

"अरे, बिटिया, लॉरियां तो सब कटाई पर गई हुई हैं।"

"तो मैं पैदल ही चली जाऊंगी। मौसम भी अच्छा है और धीरे-धीरे भी चलूंगी तो शाम तक घर पहुंच ही जाऊंगी।"

ज़मुर्रद हंसी। "और हिज़री क्या कहेगा मुझे? मेरा घोड़ा ले लो। अभी तुम इस लायक नहीं हो कि पैदल चल सको।"

नसीबा जानती थी कि ज़मुर्रद से बहस करना बेकार होगा। "आख़िर ऐसा क्यों है कि मेरी सगी मां भी तुम्हारे जैसी नहीं है? शुक्रिया!.. इस घोड़े ने एक दिन मेरे लिये एक बोझा मिट्टी ढोई थी। जैसा मैं तब डर रही थी, अब नहीं डर रही। जिसे जो कहना हो, कहे!"

"राह बख़ैर! मैं भी शाम तक वापस आ जाऊंगी।"

ज़मुर्रद ने नसीबा को काठी पर बैठने में मदद दी।

घोड़ा धीरे-धीरे बढ़ चला, जैसे जान रहा हो कि सवार

कमज़ोर है। नसीबा ने किताब खोली और एक मुड़ा-तुड़ा काग़ज़ तितली की तरह फड़फड़ाता गिर पड़ा। नीचे उतर कर उसने उसे उठा लिया। पुर्ज़ा हिज़री का था। उसने अपने चारों ओर देखा – कोई नहीं था। घोड़ा लिये-लिये वह धीरे-धीरे पैदल चलती पुर्ज़ा पढ़ने लगी। उसमें केवल उसके जल्दी से अच्छा होने और सही-सलामत उर्कुख़ लौट आने की बात ही उसने लिखी थी, मगर साफ़ था कि नसीबा ने उसमें उससे काफ़ी ज़्यादा पढ़ लिया था: उसके गालों पर लाली दौड़ गई, उसने ऐसे सिर हिलाया जैसे सब समझ रही हो, मुस्कुरायी और अपने आप से ही कुछ धीरे से कहा।

हसन के साक्ल्या में नसीबा सीधे अपने कमरे में पहुंची और तुरन्त अपना जो भी थोड़ा बहुत सामान था, जुटाने लगी। उसने तय कर लिया था कि उस घर को, जहां उसने इतने अपमान सहे हैं, छोड़ देगी। सोचो ज़रा! जल्दी ही वह आज़ाद हो जायेगी, हवा की तरह आज़ाद, जैसी वह पहले थी वैसी आज़ाद। यह सोच कर ही उसका मन बल्लियों उछलने लगा... इस अग्निपरीक्षा में से गुज़रना शायद उसके लिये अच्छा ही हुआ। इससे उसे इतनी सीख मिली। उसने अपने मां-बाप का कहा माना था और उन्होंने समझा था कि वे उसके लिये जो अच्छे से अच्छा हो सकता था, कर रहे हैं। पर वह किस गोरखधन्धे में पड़ गई थी! अब तो वे भी समझ गये हैं। वह इस घर को हमेशा के लिये छोड़ देगी और वापस अपने मां-बाप के पास चली जायेगी, जो उसे पा कर ख़ुश होंगे। अब्बा कह नहीं रहे थे कि वह फ़िक्र के मारे परेशान हैं और जो गलती उनसे हो गई है,

उसके लिये अफ़सोस के मारे हाथ मल कर रह जाते हैं? मां भी उसे बांहों में भर लेगी और शायद माफ़ी भी मांगेगी।

वह खुली हुई खिड़की तक गई और उस सड़क की ओर देखने लगी, जो उसे इस घिनौने घर से दूर ले जायेगी। अपने सिर से ऊपर एक चिट्ठी हिलाता और चिल्लाता डाकिया रशीद उसकी ओर दौड़ा आ रहा था:

"उमलात की ख़बर! ख़त!"

नसीबा जल्दी से खिड़की से पीछे हट गई... उमलात? ख़ुशी-ख़ुशी वह जो मन्सूबे बांध रही थी, उनमें उसने अपने आप से यह पूछा भी न था कि अगर वह लौट आया, तो क्या होगा? वह उसका अस्तित्व ही भुला बैठी थी। और अब... क्या करना होगा? दुविधा में वह कमरे में ऐसे खड़ी हो गई, जैसे उसे काठ मार गया हो।

रशीद तेज़ी से सीढ़ियां चढ़ कर नसीबा के हाथ में ख़त देने और पूरी कहानी बता कर अपनी आत्मा का बोझ हलका करने की नीयत से बाड़े में दौड़ा-दौड़ा आया। पर निचली सीढ़ी पर ही उसे ज़ाज़ा ने रोक लिया। भुनभुनाता-सा वह आंगन में उसके पास चला गया।

"ख़ुशख़बरी लाने वाला इनाम का हक़दार होता है, ज़ाज़ा-चाची। उमलात का ख़त है।"

अपने चारों ओर देखते हुए ज़ाज़ा ने रशीद से ख़त ऐसे लिया, जैसे वह जलता हुआ अंगारा हो।

"क्या ज़रूरी है कि तुम चिल्लाओ और आऊल भर को सुनाओ?"

कुछ दिनों से ज़ाज़ा को शक होने लगा था कि उमलात उसी रूसी लड़की से मिलने भाग गया है—शायद उसने उससे

शादी भी कर ली है। और कहीं ऐसा न हो कि इस ख़त में वही सब लिखा हो? बड़े डरते-डरते उसने एक बार फिर चारों ओर नज़र दौड़ाई। जानदार चीज़ों के नाम पर बकरी थी और एक कुत्ता था, जो शक़ की नज़रों से रशीद की ओर ताक रहा था। तेज़ी से उसने ख़त को अपनी पोशाक़ में छिपा लिया। रशीद को घुड़की भरी उंगली दिखाते हुए उसने कहा:

"सुना तुमने! किसी से एक लफ़्ज़ नहीं कहना इस ख़त के बारे में। समझे?"

"समझ गया।"

"तभी तुम्हें तुम्हारा इनाम मिलेगा।"

यह तो ऐसे ही है जैसे कुत्ता अपनी हड्डी मुझे दे रहा हो, रशीद ने सोचा। नसीबा की खिड़की से गुज़रते उसने ऊपर देखा, पर कोई दिखाई नहीं दिया। इससे कोई फ़ायदा नहीं होने का, उसने मन ही मन कहा। जब कोई किसी की चिट्ठी छिपाता है, तो ज़रूर दाल में कुछ काला होता है। राज़ कभी राज़ नहीं रह पाता। जो एक ख़त लिखेगा, वह दूसरा भी लिख सकता है—और ज़ाज़ा सारी ज़िन्दगी भर आंगन में चौकीदारी करती खड़ी नहीं रह सकती।

नसीबा जब ऊपर की मंज़िल से उतर कर नीचे बाहर वाली सीढ़ियों तक पहुंची, ज़ाज़ा हाते में खड़ी उस ख़त के बारे में माथापच्ची कर रही थी। वह कितनी बेवकूफ़ थी कि उसने पढ़ना-लिखना सीखने से इनकार कर दिया था। यहां तक कि उन्होंने उसे जबरन सिखाना चाहा और उसे ग्राम सोवियत तक ले आये जहां दश्तेमीर ने उसे साक्षरता की नेमतों और निरक्षरता से नुकसान पर घंटों बताया था। पर

वह तो ऐसा ही था जैसे गधे को कान पकड़ कर स्कूल घसीट लाया जाये। वह भी कितनी जाहिल थी!

"मेरी प्यारी बिटिया," वह दुलराती बोली। "कैसी पीली लग रही है, बेचारी। मैं दौड़ कर किसी पड़ोसी के यहां से शहद ले आती हूं... और तब तक तुम ज़रा मेरी काटी इस लकड़ी का चट्टा लगा दो।"

"ख़त कहां है?"

"ख़त? कैसा ख़त?"

"उमलात का ख़त जो रशीद दे गया है।"

"अरे वह। वह बेवकूफ़ तो हमेशा गड़बड़ा देता है। वह रशीद के भाई उमलात का ख़त था, हमारे उमलात का नहीं।"

"इस तरह झूठ बोलने से क्या फ़ायदा?" नसीबा को इतना ताव आया कि वह वैसे ही अपने कमरे में लौट गई और उसने ज़ाज़ा के बार बार गुस्से में "मैं झूठी?" चिल्लाने को सुना भी नहीं।

ज़ाज़ा बाहर सड़क पर चली गई। शायद ख़त में वह न हो, जो वह सोच रही है, शायद उसमें सिर्फ़ यही लिखा हो कि वह जल्द वापस आ रहा है। किससे पढ़वाये वह इसे। इब्राहीम-आज़ी से? नसीबा के नग़मों से उसका सर फिर गया है और फिर वह बाल की खाल निकालने वाला भी तो है। या सड़क पर आ रहे इस आदमी से? नहीं, वह तो ज़करिया है, सुर्ख़ाई का भाई, जो चलता-फिरता भोंपू है। उसके मुंह से तो अच्छी ख़बर भी मृत्यु के समय पढ़ी जाने वाली यास की तरह लगती है। यह सच है कि ऐसा आदमी लोगों से कहता नहीं फिरेगा, पर यह भी तो हो सकता है कि वह

उसके लिये इतनी तकलीफ़ भी गवारा न करे। अरे, वह रहा कासिम। नहीं, वह उसका एतबार नहीं कर सकती; वही है न, जो नसीबा की सहेली से इश्क़ कर रहा है!

तभी उसे ज़मुर्रद दिखाई दी।

जब दोनों आमने-सामने आ गईं, तो ज़मुर्रद ने पूछा, "मेरा घोड़ा क्या अभी तुम्हारे ही यहां है?" फिर अचरज में ज़ाज़ा की आंखों में रह रह कर बदलते भावों को देखने लगी।

"अहा! सलाम अलैकम ज़मुर्रद। तुम्हारा घोड़ा? उसे तो पड़ोसी के लड़के के हाथ मैंने वापस भेज दिया था। उसे मेरी बेटी को सवारी के लिये देने का बहुत-बहुत शुक्रिया। वह बेचारी अब भी बड़ी कमज़ोर है।" इन मधुर वचनों के प्रवाह में ज़ाज़ा सोच रही थी: हूं, इस ज़मुर्रद की सभी इज़्ज़त करते हैं और यह मेरा राज़ नहीं खोलेगी। कहे भी क्यों किसी से? बिना एक शब्द कहे वह ज़मुर्रद का हाथ पकड़ उसे एक किनारे ले गई और उसके हाथ में ख़त थमा दिया।

"ज़मुर्रद, अज़ीज़ा, मुझे यह ख़त पढ़ कर सुना दो। कहते हैं उमलात का है।"

"उमलात?"

"हां। यही तो कह रहे थे।"

ज़मुर्रद भी अब उतनी ही उत्सुक हो गई जितनी कि ज़ाज़ा, पर कुछ दूसरी ही वजह से। वह डर रही थी कि कहीं उमलात माफ़ी मांग कर वापस नसीबा के पास न लौट रहा हो। या फिर हो सकता है कि वह रीता के साथ लौट रहा हो और दूसरी बातों के साथ इसका एक अर्थ यह भी

होगा कि फ़ार्म को अपना सबसे अच्छा काम करने वाला वापस मिल जायेगा। अपने अन्दर की उथल-पुथल को मुश्किल से ज़ब्त करते उसने लिफ़ाफ़ा खोला और ख़त बाहर निकाला। एक फ़ोटो फड़फड़ाता हुआ ज़मीन पर गिर गया। ज़मुर्रद ने उसे उठा लिया।

फ़ोटो में एक मुस्कुराता जोड़ा जगमगा रहा था।

"क्या यह मुमकिन है कि..." शब्द ज़ाज़ा के गले में अटक गये।

"हां, ज़ाज़ा अज़ीज़ा, यह मुमकिन है–और है भी यही बात। यह रहा उमलात और यह रही रीता, उसकी बीवी। बड़ी अच्छी जोड़ी है।"

"इसमें इतना ख़ुश होने की क्या बात है?" ज़मुर्रद के हाथों से ख़त और फ़ोटो छीनती ज़ाज़ा बोली। "क्या तुम्हें इस बात की ख़ुशी है कि मेरा बेटा भाग गया और उसने एक रूसी लड़की से शादी कर ली है?"

"हां, वह उससे मुहब्बत करता है... अब तुम्हें ख़त पढ़ कर सुनाने की ज़रूरत तो नहीं है न, कि है?"

"बेशक़ नहीं! .. ज़रा सोचो भला, मैं तो तुम्हें एक शरीफ़ और इज़्ज़तदार औरत समझती थी और तुम हो कि इस बात पर ख़ुश हो रही हो कि मेरे बेटे ने ख़ानदान के नाम पर बट्टा लगाया है!"

हिज़री को शुभसमाचार देने ज़मुर्रद तेजी से घर की ओर चल पड़ी। नसीबा अब आजाद थी!

ख़त और फ़ोटो दबाये ज़ाज़ा खोई-खोई-सी खड़ी थी। क्या वह इसे फाड़ डाले और किसी से इसका ज़िक्र न करे? घर का मालिक तो हसन है: उसे तो दिखाना ही पड़ेगा।

फाटक पर उसे हाथ में गठरी लिये नसीबा मिली।

"तुम कहां चलीं?" उसने झल्लाते हुए पूछा।

"जहां तुम न मिलो! तुम्हारी ख़ातिरदारी का शुक्रिया," नसीबा बोली। वह ठीक से दुपट्टा नहीं ओढ़े थी और उसके काले बाल दिखाई दे रहे थे, पर अब उसे इस तरह की बातों की फ़िक्र नहीं थी। "यह कैसा ख़त है तुम्हारे हाथ में?"

"यह?.. अरे, यह तो बस यूं ही..." ज़ाज़ा हकलाई। "यह सच नहीं हो सकता, मेरी बिटिया, है न? वह रूसी से शादी नहीं कर सकता।"

"कौन?"

"उमलात।"

"यानी कि उमलात ने शादी कर ली है?"

"कहते हैं उसने उस रीता से शादी कर ली है, मगर बेटी, तुम इस पर एतबार मत करो। कहो न, कि तुम्हें इस पर एतबार नहीं है।"

"और इस पर भी तुमने हलफ़ उठाया था कि रशीद कोई ख़त नहीं लाया!"

नसीबा अब समझी कि क्यों उसका बाप बार-बार यह कहा करता था कि उमलात उनके साक्ल्या के चक्कर काटा करता था।

"मैंने सोचा... मुझे यही देखना बदा था... मैं भी निरी बेवकूफ़ थी!.. रहम करो, नसीबा बिटिया, अब हमें छोड़ कर मत जाओ।" ज़ाज़ा के होठों से ऐसे शब्द निकल रहे थे, जो ख़ुद उसके लिये कोई मानी न रखते थे।

"बस, हो चुका, काफ़ी हो चुका ज़ाज़ा-चाची," नसीबा ने रुखाई से कहा और चल दी। ज़ाज़ा फाटक पर बैठ अपनी आंखें पोंछने लगी।

उसे बड़ा अचरज हुआ, जब हसन ने इस ख़बर को बिलकुल ख़ामोशी के साथ सुना और यहां तक कहा: "यह है तुम्हारा असली बेटा! बिल्कुल अपने बाप को पड़ा है, एकदम। और वह ख़ुद एक लायक बाप बनेगा।" उसके लाख यह ज़ाहिर करने के बावजूद कि वह मर्द है और घर में उसी का हुक्म चलेगा, हसन में ज़ाज़ा जैसी हठधर्मिता नहीं थी।

अपने मां-बाप के घर जाते हुए नसीबा उमलात और रीता के बारे में सोच रही थी। उसने उमलात को उस लड़की से शादी करने के लिये दोषी नहीं ठहराया, मगर अब वह उसे ईमानदार और दिलेर आदमी मानने को तैयार नहीं थी। क्या वह उसे सब कुछ और साफ़-साफ़ नहीं बता सकता था, या फिर इस तरह भागने और उसे "शादीशुदा कुंआरी" छोड़ने के बजाय कम से कम एक पुर्ज़ा ही उसके नाम लिख कर नहीं छोड़ सकता था? नहीं, वह उमलात को सच्चा जिघित नहीं मान सकती थी!..

घर में उसका स्वागत वैसा कतई नहीं हुआ, जैसी उसे उम्मीद थी। यह सच है कि उसका पिता ख़ुश था, पर उसकी मां असमंजस में पड़ गई।

नसीबा ने अपना दुपट्टा उतारा और उसी कमरे में एक स्टूल पर बैठ गई, जहां उसके मां-बाप ने उसकी शादी के बारे में अपना फ़ैसला सुनाया था।

"जब आप लोगों ने मुझे अपने फ़ैसले के बारे में बताया था," उसने शान्तिपूर्वक कहा, "तो मैंने आप लोगों की बात मान ली थी। अब मैं वह करूंगी, जो मैं ठीक समझूंगी।

अगर आप मुझे उस घर में वापस नहीं आने देना चाहते, जिसमें मैं पैदा हुई, तो उसके लिये मैं आप लोगों को कुछ न कहूंगी—पर मैं कहीं न कहीं अपने रहने भर को जगह ढूंढ ही लूंगी। यह मेरा फ़ैसला है, मां।"

"क्या सचमुच तू हसन का साक्ल्या छोड़ आई?" आंखें फाड़े घूरती शमाई उसे इस समय अद्भुत रूप से मुअज़्ज़िन मुख़्तार से मिलती-जुलती लगी। "तूने शादी तोड़ दी है। तेरे शौहर के मां-बाप इस बेइज़्ज़ती के लिये हमें कभी माफ़ न करेंगे।"

"मेरा कोई शौहर नहीं है—न था। उमलात ने रीता से शादी कर ली है।"

"वह कौन है?"

"वही रीता, जो हमारे साथ रहती थी।"

"वाहियात! जाने कहां से तुम ये बेसिर पैर की बातें सुना करती हो। वह वापस तुम्हारे पास आयेगा, बिटिया। अच्छी, समझदार लड़की बनो।"

"इन सब बातों में कुछ नहीं धरा, मां। मैं काफ़ी अरसे तक आंखें मूंदे रही। अब सब ख़त्म। मैं कहे देती हूं—मैं अब वहां वापस नहीं जाऊंगी।"

हबीब इस बीच खिड़की के पास खड़ा दूर कहीं देख रहा था। जब उसने उमलात की शादी के बारे में सुना, तो उसे अपना ग़ुस्सा ज़ब्त करने के लिये बड़ी कोशिश करनी पड़ी। पर उसने अपना क़ायदा नहीं छोड़ा: औरत के सामने ज़ोर से कभी मत बोलो।

"तेरी यह हिम्मत!" शमाई चीखी। "जब वे तुझे घर से निकाल दें, तभी तू वह घर छोड़ सकती है।"

"मैंने पहले ही छोड़ दिया है।"

"और अब क्या करेगी तू? फिर बेहया की तरह क्लब में गायेगी?"

"हां, मैं गाऊंगी और काम करूंगी," नसीबा ने दृढ़तापूर्वक कहा।

नसीबा की आवाज़ में दृढ़ता का पुट पाकर हबीब मुड़ा। हां, यह है उसकी लड़की! अब उस पर कोई अपनी मर्ज़ी नहीं लाद सकता।

"शाबाश, बिटिया!" उसने धीरे से कहा।

"क्या मतलब?" शमाई चीख ही पड़ी। "तुम भी! तुम, उसके बाप हो कर, कहते हो कि वह क्लब में गाये? तुम्हें शर्म आनी चाहिए!"

"बहुत हो चुका! अब मैं किसी को अपनी बिटिया को तकलीफ़ देने की इजाज़त नहीं दे सकता। तुम्हें भी नहीं। यहां और अभी मैं क़बूल करता हूं कि मैंने उसके साथ ग़लत सुलूक किया है। हम दोनों ही बेवकूफ़ थे। उसका स्कूल छुड़ा देना हमारी बहुत बड़ी ग़लती थी... अब से वह अपना फ़ैसला ख़ुद करेगी।"

"क्या कह रहे हो तुम? वह गा-गा कर हमारी नाक कटायेगी? तुम्हारी ही वजह से उस्मान या ज़मुर्रद की हिम्मत होती है तुमसे इस बारे में कहने की। यही वजह होगी... और लड़की, तू, तू वापस जाती है कि नहीं?"

"कभी नहीं!"

"तो निकल जा यहां से! फिर कभी मेरी आंखों के सामने मत आना! तूने इस घर के नाम पर बट्टा लगाया है। जा और याद रख कि तू अगर अपने घुटनों के बल भी वापस

आई, तो मैं तुझे माफ़ नहीं करूंगी। फिर कभी ड्योढ़ी के इस पार क़दम मत रखना और देख लेंगे कौन पछताता है!"

"मैं कभी माफ़ी नहीं मांगूंगी और मुझे कभी अफ़सोस न होगा।" नसीबा अपनी गठरी तक गई। "मैं अपनी स्कूली किताबें ले सकती हूं?"

"ले जा।" बुरी तरह से सुबकती और दुपट्टे के छोर से आंखें पोंछती शमाई एक गद्दे पर ढेर हो गई।

नसीबा ने जल्दी से अपनी किताबें बांधी, गठरी और रीता का दिया बस्ता उठाया और दरवाज़े की ओर चल दी। "कहीं न कहीं मुझे रहने भर को जगह मिल ही जायेगी – धरती बहुत बड़ी है। अलविदा, मां।"

"रुको, नसीबा!" यह दिखाने के लिये कि वह उसके साथ एक ऐसी औरत की तरह व्यवहार कर रहा है, जिसकी अपनी "स्वतन्त्र सत्ता" है, हबीब ने पहली बार अपनी लड़की को उसका नाम ले कर पुकारा था। उसने नसीबा की गठरी उसके हाथ से ले ली और शान्तिपूर्वक कहा: "मैं भी तुम्हारे साथ चल रहा हूं।"

शमाई हक्की-बक्की रह गई और उसे तब जा कर कहीं होश आया, जब उसने फाटक बन्द होने की आवाज़ सुनी।

"यह क्या कर डाला मैंने?.. हबीब! हबीब!.. नसीबा! नसीबा!.. वापस आ जाओ!"

वह बरामदे तक दौड़ी-दौड़ी आई, पर आंगन में कोई न था। सिर्फ़ फाटक के बन्द होने की आवाज़ हवा में गूंज रही थी।

उपसंहार

हर आऊल के इतिवृत्त में घटनाओं पर घटनायें बीतती जाती हैं। उनमें से कुछ तो अल्पकालिक होती हैं कि घटीं और फिर चिमनी के धुएं या चक्कीवाले की घाटी के सुबह के कोहरे की तरह विलीन हो गईं। दूसरी कुछ याददाश्त में सदा के लिये अंकित हो जाती हैं जैसे आजकल के बुततराशों के कई पुश्त पुराने पुरखों द्वारा प्राचीन स्मारकों पर खुदे आलेख। और आज उर्कुख़ में इसी तरह की एक स्मरणीय घटना हो रही है। यही वजह है कि सारा आऊल मस्ती का जामा पहने है। बारजे, बरामदे और घरों की दीवारें सब उस चटक सुनहले पीले और नीले रंग में पुते हैं, जो फलोद्यानों और गृहोद्यानों की ताज़ी हरियाली के बीच चमचमा रहा है। और मुझे विश्वास है कि किसी ऊंची चरागाह पर उगे पोस्त के फूलों की तरह के लाल झण्डों पर आपकी नज़र ज़रूर गई होगी, जो हर जगह लहरा रहे हैं और बहती हवा में फड़फड़ा रहे हैं। उर्कुख़ के बुज़ुर्ग लोग आपको इत्मीनान दिलायेंगे कि १९२० के बाद से, जब हमारी पहाड़ी धरती दागिस्तान में विजयिनी सोवियत सत्ता की सदा-सदा के लिये स्थापना हुई थी, उर्कुख ने कभी इतने झण्डे – लगाये जाते नहीं देखे। उस दिन हर पहाड़ी ने अपने साक्ल्या पर एक झण्डा फहराया था, या, अगर उसके पास लाल झण्डा नहीं था, तो उसने ज़री के काम का लाल हिन्दुस्तानी दुपट्टा ही फहरा दिया था।

आज उर्कुख़ के लोगों ने अपने पुराने ख़ानदानी सन्दूकों का, जिनमें वे अपने मेले-त्यौहार में काम आने वाले अच्छे-

अच्छे वस्त्राभूषण रखते हैं, सामान ख़ूब उलटा-पलटा। बच्चे से ले कर बूढ़े तक, सभी, राष्ट्रीय पोशाक में हैं। मर्द सर्कांशियाई कोट और अच्छे चमड़े के जूते पहने हैं, जिनसे किरणें टकरा कर लौट रही हैं। लड़कियां कमख़ाब और चीनी रेशम की रंग-बिरंगी पोशाकों में, जिनके दुहरे मुड़े किनारों के नीचे से सोने के तार की कशीदाकारी की गोट लगी शलवारें झांक रही हैं, ख़ूबसूरत लग रही हैं। उनके पैरों में हलके मचाइती हैं, जिनसे उनकी चाल हंस की सी मंद और मोहक हो जाती है, चाहे वे ऊबड़-खाबड़ सड़कों पर ही क्यों न चल रही हों। सफ़ेद छाबा, जो केवल बूढ़ी औरतों ने ही पहन रखा है, एक तरह का दुपट्टा-सा है, जिससे गर्म देशों की औरतें अपना सिर और गर्दन ढंके रहती हैं।

उर्कुख़ में आज बहुत से मेहमान आये हुए हैं, जिन्हें बोल्शेविक उस्मान ने इस सामुदायिक उत्सव में हिस्सा लेने के लिये बुलाया है। अपनी लड़की सकीनत और दामाद सुलेमान के साथ भारी भरकम मुस्तफ़ा भी यहां है–हो भी क्यों न? और दागिस्तान के विभिन्न शहरों और कसबों से उर्कुख़ के वे सपूत भी आये हैं, जिन्हें ज़िन्दगी के ज्वार ने दूर-दराज़ पहुंचा दिया है।

और देखो तो ये कौन हैं! –उमलात और रीता अपने-अपने पिता हसन और सेर्गेई वसीलियेविच के साथ, जो हलके, मुलायम, रेशम के सूट पहने लगभग तीन साल के अलेक्सान्द्र का हाथ थामे हैं, चले आ रहे हैं। उनके पीछे-पीछे चमकीला काला साटन पहने ज़ाज़ा चल रही है, जो अपने नाती पर चौकस नज़र रखे है कि कहीं वह लड़खड़ा कर गिर न पड़े।

उर्कुख़ के हर गली-कूचे से लोग जल्दी-जल्दी संस्कृति-सदन में इकट्ठे हो रहे हैं।

ग्राज दुहरी ख़ुशी का दिन है—संस्कृति-सदन का उद्घाटन ग्रौर कवि बतिराई पर नाम-करणित दागिस्तानी राष्ट्रीय थियेटर की उस गश्ती मंडली का पहला प्रदर्शन, जिसके ग्रभिनेता कुछ ही दिन पहले येरेवान की थियेटर इन्स्टीट्यूट से स्नातक हो कर निकले हैं।

ग्रौर ये हैं ज़ुल्फ़िकार ग्रौर उसकी निराली लड़की किस-तमान, जो ग्रपने पुराने स्कूल के बच्चों के हाथ में ज्ञान की मशाल देने के लिये विश्वविद्यालय से स्नातिका हो कर ग्रगले साल ग्रपने ग्राऊल लौट ग्रायेगी।

ग्रपनी शानदार मूंछों की ग्रोट में मुस्कुराहट छिपाते ज़ुल्फ़िकार ने कहा: "कहते हैं इस मंडली में कासिम भी है... क्या वह ग्रब भी तुम्हें चिट्ठियां भेजा करता है?"

"नहीं, ग्रब्बा," एकदम से ग्रौर बुरी तरह शरमाते हुए किस-तमान ने जवाब दिया।

"ग्रच्छा, ठीक है, देखते हैं हमारे बालों की कटाई करने वाला मंच पर ग्रपनी ज़िम्मेदारी कैसे निभाता है।"

तभी उर्कुख़ के सामूहिक फ़ार्म की एक मशहूर चरवाहिन एक गली से निकलती है ग्रौर उनमें शामिल हो जाती है। यह फ़ातिमा है। एक ज़माने की दुबली-पतली इस लड़की को ग्राप मुश्किल से ही पहचान पायेंगे। खुली हवा, लगभग घुमक्कड़ों की सी ज़िन्दगी ग्रौर गड़रियों के स्वास्थ्यप्रद भोजन ने उस पर ग्रपना बड़ा ग्रसर दिखाया है। उससे हाथ मिलाते लगता है जैसे किसी मर्द से हाथ मिला रहे हैं।

इन्हीं के पीछे-पीछे बड़मुच्छा हबीब और शमाई आ रहे हैं। लगता है जैसे आज चरवाहों के मुखिया की उमर कई बरस कम हो गई है। वह हौले-हौले क़दम रख रहा है; उसका सिर ऊंचा है; उसकी आंखों में ख़ुशी है।

"नसीबा के बारे में मैं बहुत ख़ुश हूं," वह अपनी बीवी से कहता है।

शमाई चुप है। उस परित्यक्त साक्ल्या का एकान्त उसे काट खाने को दौड़ रहा था और दूसरी ही रात वह अपने शौहर और बेटी को वापस लौटने के लिये मना लाई थी और उसने कसम खाई थी कि अपनी बेटी की ज़िन्दगी में अब वह फिर कभी दख़ल नहीं देगी।

और ये, सबके आख़िर में, चले आ रहे हैं बुज़ुर्ग दश्तेमीर और उनके लड़के। वह, जो घूम-घूम कर विभिन्न इमारतों की ओर हाथ हिला-हिला कर इशारे कर रहा है—आपने पहचान तो लिया—वास्तुशिल्पकार ज़रूर ही है। उसी की योजना के अनुसार उर्कुख़ का पुनर्निर्माण हो रहा है और साफ़ है कि उसके पास कहने को काफ़ी कुछ है, मगर उसका पिता उसकी ओर आधे से भी कम ध्यान दे रहा है। वह तो उससे कहीं अधिक कासिम के बारे में सोच रहा है। उसका यह विचित्र स्वभाव वाला लड़का मंच पर कैसा काम करता है?

"दार्घिन के लोगों की ज़िन्दगी में यह दिन महत्त्वपूर्ण है। अब तक हमारे यहां हमारा अपना रंगमंच भी नहीं था। हमारे दरिद्र, अन्धकारपूर्ण जीवन में कोई परिवर्तन हुए बिना हमारे प्राचीन पहाड़ों पर से सदियां गुज़र गई होतीं, अगर सोवियत शक्ति का शानदार अभ्युदय न हुआ होता—जनता

की वह शक्ति, जिसके लिये दागिस्तान के अनेक सपूतों ने अपना जीवन अर्पण कर दिया था। और अब, जनता की शक्ति के उल्लासमय सूर्य के तले प्रतिभायें खिल उठी हैं..."

बोल्शेविक उस्मान का भाषण हो रहा है—एक वृद्ध, जिसके बाल सफ़ेद हो गये हैं, बच्चों के से उत्साह से बोल रहा है। अब तो उसकी मूंछें भी सफ़ेद हो चली हैं और उसके धूप से तपे और मौसम के थपेड़े खाये चेहरे पर झुर्रियों की गहरी लकीरें खिंच आई हैं। पर उसकी चमकीली आंखों की रोशनी में कोई फ़र्क़ नहीं आया है। नये संस्कृति-सदन की सीढ़ियों पर खड़े-खड़े वह भाषण दे रहा है, जिसके निर्माण में प्राचीन राष्ट्रीय शैली की छोटी-छोटी सुघड़ मेहराबों के साथ-साथ आधुनिक नपी-तुली रेखाओं का भी समन्वय है।

उस्मान-चाचा थियेटर-मण्डली के नेता हिज़री को उद्घाटन समारोह के अनुष्ठान के लिये बुलाते हैं। हिज़री उपस्थित जन-समुदाय के सामने अदब से झुकता है और फ़ीता कट जाता है।

लोग भीतर आ-आ कर सुनहली दीवारों, चमचमाते झाड़-फ़ानूसों और नीले मखमल के पर्दे वाले दर्शक-स्थल को आश्चर्य भरी नज़रों से ताक रहे हैं। पर किसी वजह से बहुतेरे लोगों की दिलचस्पी उन सीटों पर ही केन्द्रित हो गई है, जो ज़रा सा स्पर्श पाते ही एक बड़ी ही ख़ुशनुमा आवाज़ करती हुई, जो पुरानी पिस्तौल की गोली चलने की आवाज़ से भिन्न नहीं होती, पीछे की ओर बढ़ जाती हैं।

सबके इत्मीनान से अपनी-अपनी सीटों पर बैठ जाने पर पर्दा खुलता है और "हमारा एक्टर" हिज़री दिखाई देता है। वह ऐलान करता है:

"आपकी निगाहे-करम और मुलाहिज़े के लिये हम अज़ीम फ़्रांसीसी नाटककार और कवि जां बप्तिस्त मोलियर का एक प्रहसन – 'ले कॉरबेरीज़ दे स्केपिन' (अर्थात् चतुरराम की चतुराइयां) – पेश कर रहे हैं।"

मेहरबानी कर शान्त हो जाइये! दरवाज़े अब बन्द हो रहे हैं, दर्शक-कक्ष की बत्तियां आहिस्ता-आहिस्ता मन्द पड़ती जाती हैं और रंगमंच के धरातल वाली बत्तियां जल पड़ती हैं...

कुछ पूछा क्या आपने?.. अच्छा, तो आप यह दरियाफ़्त कर रहे हैं कि दागिस्तान के राष्ट्रीय थियेटर ने स्केपिन को ही क्यों चुना? भई, अव्वल तो यह कि यह मोलियर का है; दूसरे प्रहसन है और तीसरे इसमें ठीक उतने ही पात्र हैं जितने मंडली में अभिनेता हैं। यह उनकी पहली कृति है और यह तो आप कभी नहीं चाहेंगे कि इसमें उनमें से कोई भी मंच पर आने से रह जाये, कि चाहेंगे?

श्-श्! पर्दा उठ रहा है।

पर्दा लिपट कर आंखों से ओझल हो जाता है और दर्शक सामने का दृश्य देख कर आश्चर्य से वाह-वाह कर उठते हैं। हमारी आंखों के सामने है नेपल्स, अपनी विश्वप्रसिद्ध खाड़ी के एक भाग और पृष्ठभूमि में बुरी तरह से धुआं उगलते ज्वालामुखी विसूवियस के साथ। तालियों की गड़गड़ाहट ऐसी लग रही है जैसे पक्षियों का झुण्ड अभी-अभी उड़ा हो। दर्शक पास ही के एक आऊल के नौजवान चित्रकार बुलात की प्रशंसा कर रहे हैं।

स्टेज पर काम करने वाले १७वीं सदी के नेपल्स के बाशिन्दे हैं, मगर वे दार्घिन की ज़ुबान बोलते हैं। उर्कुख़ के

लोग इतना मगन हो कर ग्रौर इतना दिल खोल कर कभी नहीं हंसे थे। मोलियर के हास्य ने पहाड़ियों को जीत लिया!

नाटक चलता जाता है, पर हमारी कथा समाप्त होती है–ग्राइये, चुपके से निकल चलें। श्-श्! कहीं हबीब का पैर न कुचल जाये, मगर उसके पास से गुज़रते हुए ज़रा यह तो देखते जाइये कि उसकी शानदार मूंछें हंसी के साथ-साथ कैसी हिलती हैं। ज़ुल्फ़िकार के पास से हौले-से बढ़ चलिये; सिर हिलाते ग्रौर "ग्रय्-ग्रय्-ग्रय्... ख़ूब है यह भी!" कहते वह ख़ुशी के मारे फूला नहीं समा रहा है। ग्रौर बुज़ुर्ग ग्रौर काली साटन पहने ज़ाज़ा रह-रह कर गुप-चुप ऐसे हंस पड़ती है जैसे किसी बच्चे को गुदगुदाया जा रहा हो।

ग्रौर, ग्रब जब कि हम खुले में, पहाड़ों की ताज़ी हवा की गोद में ग्रा गये हैं, विदा होते हुए, पहाड़ों के काले हुजूम पर, फिर पुराने टूटे-फूटे साक्ल्यों के कारण पथराये झरने सी बनी उस उतराई पर, जिसने न कभी पेड़ों की हरियाली जानी न ज़िन्दगी की ख़ुशी, ग्रौर फिर घाटी में बत्तियों से जगमगाते नये उर्कुख़ पर एक नज़र डालते चलें।

पाठकों से

प्रगति प्रकाशन इस पुस्तक की विषय-वस्तु, अनुवाद और डिज़ाइन सम्बन्धी आपके विचारों के लिए आपका अनुगृहीत होगा। आपके अन्य सुझाव प्राप्त करके भी हमें बड़ी प्रसन्नता होगी। हमारा पता है: **प्रगति प्रकाशन,**

२१, ज़ूबोव्स्की बुलवार,
मास्को, सोवियत संघ

АХМЕДХАН АБУ-БАКАР
ДАРГИНСКИЕ ДЕВУШКИ
Повесть
На языке хинди

Перевод сделан по изданию:
Ахмедхан Абу-Бакар. Даргинские девушки.
Издательство «Молодая гвардия».
Москва. 1963 год.

Редактор М. Арбаков
Издательский редактор Е. Колкотин
Корректоры Т. Малашина, Л. Валетова
Художественный редактор С. Барабаш
Технический редактор В. Шиц
Подписано к печати 11.IX.1969 г. Формат 74×90 1/32.
Бум. л. 2 15/16. Печ. л. 7,23. Уч.-изд. л. 9,07.
Изд. № 10911. Заказ № 1484. Цена 73 к.
Тираж 4300.

Издательство «Прогресс» Комитета по печати при
Совете Министров СССР Москва Г-21,
Зубовский бульвар, 21
Московская типография № 7
Главполиграфпрома Комитета
по печати при Совете
Министров СССР
пер. Аксакова, 13

इस पुस्तक के नाम से ही पाठकों को इस बात का अनुमान हो चुका है कि चर्चा लड़कियों की होगी। लड़कियों की और... प्रेम की भी? हां, यह बात तो सही है। हम, बस, यहां ही रुक जायेंगे... नसीबा, जैनब, सकीनत, अशूरा और किस-तमान का जन्म एक ही दिन हुआ था, लेकिन उनके नसीबे अलग-अलग थे। कहानी का प्रारंभ उस घड़ी में होता है, जब प्रत्येक लड़की को अपना भाग्य-निर्णय करना पड़ रहा है। उनका भविष्य जो भी हो, किन्तु पांचों सहेलियों का जीवन अभिन्न रूप से उस नये तथा महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों से जुड़ा हुआ है, जो उनके अपने आंचल में हुए थे और जिन्होंने पुराने रस्म-रिवाजों की जगह ले ली थी।

अहमद अबू-बकर एक पर्वतीय गांव कुबाची में पैदा हुए थे, जो धातु पर नक़्क़ाशी के सुंदर काम के लिये दुनिया भर में ख्यातिप्राप्त है। अपने पुरखों के परंपरागत हुनर की शिक्षा पाने के समय ही उन्होंने छेनी की जगह क़लम थाम ली, और इससे उन्होंने मातृभूमि के नाम को घटाया नहीं, बल्कि बढ़ाया ही। अबू-बकर कुबाची के प्रथम लेखक बने। उनकी शैली जहां आकर्षक और रस से परिपूर्ण है, वहां तर्कपूर्ण भी है। 'दार्गिन की लड़कियां', 'चेगेरी', 'मेरी सरमिनाज़ की यह मोतीमाला' तथा 'हिम [illegible]' ने लाखों पाठकों को मोहित किया है।

भारतीय पाठकों के सम्मुख रखी जानेवाली यह पुस्तक युवा लेखक की प्रथम कृति है, जिसने पर्वतों को लांघकर विशाल विश्व में पदार्पण किया है। पुस्तक की पांच मुख्य पात्रियों, पांच शैल बालाओं का सुख-दुख लेखक के दिल के सुख-दुख के साथ ऐसे घुलमिल गया है। ख़ुद दागिस्तानी होने के कारण उन्हें अपने हमवतनों की ख़ूब जानकारी है।

Цена 73 коп.